श्रीरामकृष्ण-उपदेश

(स्वामी ब्रह्मानन्दजी द्वारा संकलित)

(द्वितीय संस्करण)

श्रीरामकृष्ण आश्रम
धन्तोली, नागपुर-१
म. प्र.

..कानेर

अनुक्रमणिका

विषय		पृष्ठ

भगवान् श्रीरामकृष्ण देव

की

संक्षिप्त जीवनी

हम यह देखते हैं कि श्रीरामचन्द्र तथा भगवान् बुद्ध को छोड़कर बहुधा अन्य सभी अवतारी महापुरुषों का जन्म संकटग्रस्त परिस्थितियों में ही हुआ है, और यह कहा जा सकता है कि भगवान् श्रीरामकृष्ण भी किसी विशेष प्रकार के सुखद वातावरण में इस संसार में अवतरित नहीं हुए।

श्रीरामकृष्ण का जन्म हुगली प्रान्त के कामारपुकुर गाँव में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण परिवार में शके १७५७ फाल्गुन मास की शुक्लपक्ष द्वितीया, तदनुसार बुधवार ता० १७ फरवरी १८३६ ई० को हुआ। कामारपुकुर गाँव बर्दवान से लगभग २४-२५ मील दक्षिण तथा जहानाबाद (आरामबाग) से लगभग आठ मील पश्चिम में है।

श्रीरामकृष्ण के पिता श्री क्षुदिराम चट्टोपाध्याय परम संतोषी, सत्यनिष्ठ एवं त्यागी पुरुष थे और इनकी माता श्री चन्द्रामणि देवी सरलता तथा दयालुता की मूर्ति थीं। यह आदर्श दम्पति पहले देरे नामक गाँव में रहते थे परन्तु वहाँ के अन्यायी ज़मींदार की कुछ ज़बरदस्तियों के कारण इन्हें वह गाँव छोड़कर करीब तीन मील की दूरी पर इसी कामारपुकुर गाँव में आ बसना पड़ा।

बचपन में श्रीरामकृष्ण का नाम गदाधर था। अन्य बालकों की भाँति वे भी पाठशाला भेजे गये; परन्तु एक ईश्वरी अवतार एवं संसार के पथ-प्रदर्शक को उस अ, आ, इ, ई की पाठशाला में चैन कहाँ!

बस जी उचटने लगा, और मन लगने लगा घर में स्थापित आनन्द-कन्द सच्चिदानन्द भगवान् श्री रामजी की मूर्ति में—स्वयं वे फूल तोड़ लाते और इच्छानुसार मनमानी उनकी पूजा करते।

कहते हैं कि अवतारी पुरुषों में कितने ही ऐसे गुण छिपे रहते हैं कि उनका अनुमान करना कठिन होता है। श्री गदाधर की स्मरण-शक्ति विशेष तीव्र थी। साथ ही उन्हें गाने की भी रुचि थी और विशेषतः भक्तिपूर्ण गानों के प्रति।

साधु-संन्यासियों के जत्थों के दर्शन तो मानो इनकी जीवनी में संजीवनी का कार्य करते थे। अपने घर के पास लाहा की अतिथि-शाला में, जहाँ बहुधा संन्यासी उतरा करते थे, इनका काफी समय जाता था। मोहल्ले के बालक, वृद्ध, सभी ने न जाने इनमें कौनसा दैवी गुण परखा था कि वे सब इनसे बड़े प्रसन्न रहते थे। रामायण, महाभारत, गीता आदि के श्लोक ये केवल बड़ी भक्ति से सुनते ही नहीं थे, वरन् उनमें से बहुत से उन्हें सहज ही कंठस्थ भी हो जाया करते थे।

यह दैवी बालक अपनी करतूतें शुरू से ही दिखाते रहा और कह नहीं सकते कि उसके बचपन से ही कितनों ने उसे ताड़ा होगा।

छिपे हुए दैवी गुणों का विकास पहले-पहल उस समय हुआ जब गदाधर अपने गाँव के समीपवर्ती अनुड़ गाँव को जा रहा था। एकाएक उसे एक विचित्र प्रकार की ज्योति का दर्शन हुआ और वह बाह्य-ज्ञानशून्य हो गया। कहना न होगा कि मायाग्रस्त सांसारिकों ने समझा कि वह मूर्छा गर्मी के कारण थी, परन्तु वास्तव में ह थी भाव-समाधि।

अपने पिता की मृत्यु के बाद श्रीरामकृष्ण अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ, जो एक बड़े विद्वान् पुरुष थे, कलकत्ता आए। उस समय वे लगभग १७-१८ वर्ष के थे। कलकत्ते में उन्होंने एक-दो स्थानों पर पूजन का कार्य किया। इसी अवसर पर रानी रासमणि ने कलकत्ते से लगभग पाँच मील पर दक्षिणेश्वर में एक मंदिर बनवाया और श्रीकाली देवी की स्थापना की। ३१ मई १८५५ को श्रीरामकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामकुमारजी इस काली-मंदिर के पुजारी-पद पर नियुक्त हुए, परन्तु यह कार्य-भार शीघ्र ही श्रीरामकृष्ण पर आ पड़ा। श्रीरामकृष्ण उक्त मंदिर में पूजा करते थे, परन्तु अन्य साधारण पुजारियों की भाँति वे कोरी पूजा नहीं करते थे, परन्तु पूजा करते समय ऐसे मग्न हो जाते थे कि उस प्रकार की अलौकिक मग्नता 'देखा सुना कबहुँ नहिं कोई'—और यह अक्षरशः सत्य भी क्यों न हो! स्वयं ईश्वर ही ईश्वर की पूजा कर रहे थे! उस भाव का वर्णन कौन कर सकता है जिससे श्रीरामकृष्ण प्रेरित हो, ध्यानावस्थित हो श्रीकाली देवी पर फूल चढ़ाते थे! आखों में अश्रुधारा बह रही है, तन मन की सुध नहीं, हाथ काँप रहे हैं, हृदय उल्लास से भरा है, मुख से शब्द नहीं निकलते हैं, पैर भूमि पर स्थिर नहीं रहते हैं और घंटी-आरती आदि तो सब किनारे ही पड़ी रही—श्री कालीजी पर पुष्प चढ़ा रहे हैं और थोड़ी ही देर में उन्हें ही उन्हें देखते हैं—स्वयं में भी उन्हीं को देख रहे हैं और कंपित कर से अपने ही ऊपर फूल चढ़ाने लगते हैं, कहते हैं—माँ-माँ-मैं-मैं-तुम...और ध्यानमग्न हो समाविस्थ हो जाते हैं। देखनेवाले समझते हैं कुछ का कुछ, परन्तु ईश्वर मुस्कराते हैं, बड़े ध्यान से सब देखते हैं और विचारते होंगे कि यह रामकृष्ण हूँ तो मैं ही!

उनके हृदय की व्याकुलता की पराकाष्ठा उस दिन हो गई जब व्यथित होकर माँ के दर्शन के लिये एक दिन मंदिर में लटकती हुई तलवार उन्होंने उठा ली, और ज्योंही उससे वे अपना शरीरान्त करना चाहते थे कि उन्हें जगन्माता का अपूर्व अद्भुत दर्शन हुआ और देह-भाव भूलकर वे बेसुध हो ज़मीन पर गिर पड़े। तदुपरान्त बाहर क्या हुआ और वह दिन तथा उसके बाद का दिन कैसे व्यतीत हुआ, यह उन्हें कुछ भी नहीं मालूम पड़ा। अन्तःकरण में केवल एक प्रकार के अननुभूत आनन्द का प्रवाह बहने लगा।

बेचारा मायाग्रस्त पुरुष यह सब कैसे समझ सकता है? उसके लिये तो दिव्य चक्षु की आवश्यकता होती है। बस श्रीरामकृष्ण के घर के लोग समझ गये कि इनके मस्तिष्क में कुछ फेरफार हो गया है और विचार करने लगे उसके उपचार का। किसी ने सलाह दी कि यदि इनका विवाह कर दिया जाय तो शायद मानसिक विकार (?) दूर हो जाय। विवाह का प्रबंध होने लगा और कामारपुकुर से दो कोस पर जयरामवाटी ग्राम में रहनेवाले श्रीरामचन्द्र मुखोपाध्याय की कन्या श्रीशारदामणि से इनका विवाह करा दिया गया।

परन्तु इस बालिका के दक्षिणेश्वर में आने से भी श्रीरामकृष्ण के जीवन में कोई अन्तर नहीं हुआ और श्रीरामकृष्ण ने उस बालिका में प्रत्यक्ष देखा उन्हीं श्रीकाली देवीजी को। एक सांसारिक बंधन सम्मुख आया और वह था पति का कर्तव्य। बालिका को बुलाकर शान्ति से पूछा कि यदि वह उन्हें सांसारिक जीवन की ओर खींचना चाहती है तो वे तैयार हैं। परन्तु उस बालिका ने तुरन्त उत्तर दिया, "मेरी यह बिलकुल इच्छा नहीं कि आप सांसारिक जीवन व्यतीत

करें, पर हाँ, आपसे मेरी यह प्रार्थना अवश्य है कि आप मुझे अपने ही पास रहने दें, अपनी सेवा करने दें तथा योग्य मार्ग बतलावें।"

कहा जा सकता है कि उस बालिका ने एक आदर्श अर्धांगिनी का धर्म पूर्ण रूप से निबाहा। अपने सर्वस्व पति को ईश्वर मानकर उनके सुख में अपना सुख देखा और उनके आदर्श जीवन की साथिन बनकर उनकी सहायता करने लगी। श्रीरामकृष्ण को तो श्री शारदा देवी और श्री काली देवी एक ही प्रतीत होने लगी और इस भाव की चरम सीमा उस दिन हुई जब उन्होंने श्रीशारदा देवी का साक्षात् श्री जगदंबा-ज्ञान से षोड़शोपचार पूजन किया। पूजा-विधि पूर्ण होते ही श्री शारदा देवी को समाधि लग गई। अर्ध बाह्य दशा में मंत्रोच्चार करते करते श्रीरामकृष्ण भी समाधिमग्न हो गये। देवी और उसके पुजारी दोनों ही एकरूप हो गये। कैसा उच्च भाव है—द्वैत में अद्वैत झलकने लगा!

हीरे का परखनेवाला जौहरी निकल ही आता है। रानी रासमणि के जामाता श्री मथुरबाबू ने यह भाव कुछ ताड़ लिया और श्रीरामकृष्ण को परखकर शीघ्र ही उन्होंने उनकी सेवाशुश्रुषा का उचित प्रबंध कर दिया। इतना ही नहीं, बल्कि पुजारीपद पर एक दूसरे ब्राह्मण को नियुक्त कर उन्हें अपने भाव में मग्न रहने का पूरा-पूरा अवकाश दे दिया। साथ ही श्रीरामकृष्ण के भान्जे श्री हृदय को उनकी सेवा आदि का कार्य सौंप दिया।

फिर श्रीरामकृष्ण ने विशेष पूजा नहीं की। दिन-रात 'माँ काली' 'माँ काली' ही पुकारा करते थे; कभी जड़वत् हो मूर्ति की ओर देखते, कभी हँसते, कभी बालकों की तरह फूट-फूटकर रोते,

और कभी-कभी तो इतने व्याकुल हो जाते कि भूमि पर लोटते-पोटते अपना मुँह तक रगड़ डालते थे।

इसके बाद श्रीरामकृष्ण ने भिन्न-भिन्न साधनाएँ कीं और कई प्रकार के दर्शन प्राप्त कर लिये। काली-मंदिर में एक बड़े वेदान्ती श्री तोतापुरीजी पधारे थे। वे वहाँ लगभग ग्यारह महीने रहे और उन्होंने श्रीरामकृष्ण से वेदान्त-साधना कराई। श्री तोतापुरीजी को यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि जिस निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करने के लिये उन्हें चालीस वर्ष तक सतत प्रयत्न करना पड़ा था, उसे श्रीरामकृष्ण ने तीन ही दिन में सिद्ध कर डाला। इसके कुछ समय पूर्व ही वहाँ एक ब्राह्मणी पधारी थीं। उन्होंने भी श्रीरामकृष्ण से अनेक प्रकार की तंत्रोक्त साधनाएँ कराई थीं।

श्री वैष्णवचरण, जो एक वैष्णव पण्डित थे, श्रीरामकृष्ण क पास बहुधा आया करते थे। वे उन्हें एक बार चैतन्य-सभा में ले गये। श्रीरामकृष्ण वहाँ समाधिस्थ हो गये और श्री चैतन्य देव के ही आसन पर जा विराजे। वैष्णवचरण ने मथुरबाबू से कहा, 'यह उन्माद साधारण नहीं, वरन् दैवी है।' श्रीचैतन्य की भाँति श्रीरामकृष्ण की भी कभी 'अंतर्दशा,' कभी 'अर्धबाह्य' और कभी 'बाह्य दशा' हुआ करती थी। वे कहते थे कि अखण्ड सच्चिदानन्द परब्रह्म और माँ काली सब एक ही हैं।

कामिनी-कांचन से उन्हें आदर्श विरक्ति थी। अपने भक्तगणों से, जो सैकड़ों की संख्या में उनके पास आते थे, वे कहा करते थे कि ये दोनों चीज़ें ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में विशेष रूप से बाधक हैं। बुरे आचरणवाली स्त्री में भी वे माता का साक्षात् स्वरूप देखते थे और

उसी भाव से आदर देते थे। कभी-कभी वे गिन्नियों और मिट्टी को एक साथ अंजुली में ले गंगाजी के किनारे बैठ जाते और 'मिट्टी पैसा, पैसा मिट्टी' कहते हुए दोनों चीज़ों को मलते-मलते श्री गंगाजी में फेंक देते थे। इस साधन के फलस्वरूप उन्हें कांचन से इतनी विरक्ति हो गई थी कि यदि वे पैसे या रुपये को छू लेते तो उनकी उँगलियाँ ही टेढ़ी होने लगती थीं।

माता चन्द्रामणि को श्रीरामकृष्ण जगज्जननी का स्वरूप मानते थे। अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री रामकुमार के स्वर्ग-लाभ के बाद श्रीरामकृष्ण उन्हें अपने ही पास रखते थे और उनकी पूजा करते थे।

मथुरबाबू तथा उनकी स्त्री जगदंबा दासी के साथ वे एक बार काशी, प्रयाग तथा वृंदावन भी गए थे। उस समय हृदय भी साथ में थे। काशी के मणिकर्णिका घाट में समाधिस्थ हो उन्होंने भगवान् शंकर के दर्शन किए और मौनव्रतधारी त्रैलंग स्वामी से भेंट की। मथुरा में तो उन्होंने साक्षात् भगवान् आनंदकंद, सच्चिदानन्द अंतर्यामी श्रीकृष्ण के दर्शन किए। कैसी उच्च भाव दशा रही होगी!

'सेस महेस गनेस,
सुरेस जाहि निरंतर गावैं,
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड
अछेद अभेद सुवेद बतावैं।'

—श्रीरसखानि

उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण को उन्होंने यमुना पार करते हुए गौओं को गोधूलि समय वापस लाते देखा और ध्रुव घाट पर से वसुदेव की गोद में भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन किए।

श्रीरामकृष्ण तो कभी कभी समाधिस्थ हो कह पड़ते थे, 'जो राम और कृष्ण हुआ था, वही अब रामकृष्ण होकर आया है।'

सन् १८७९-८० में श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग भक्त उनके पास आने लगे। उस समय उनकी उन्माद अवस्था प्रायः चली सी गई थी और शान्त, सदानन्द और समाधि की अवस्था थी। बहुधा वे समाधिस्थ रहते थे और समाधि भंग होने पर भावराज्य में विचरण किया करते थे।

शिष्यों में उनके मुख्य शिष्य नरेन्द्र (बाद में स्वामी विवेकानन्द) थे। जब से श्री नरेन्द्र उनके पास आने लगे थे तभी से उन्हें नरेन्द्र के प्रति एक विशेष प्रेम हो गया था और वे कहते थे कि नरेन्द्र साधारण जीव नहीं है। कभी-कभी तो नरेन्द्र के न आने से उन्हें व्याकुलता होती थी; क्योंकि वे यह अवश्य जानते रहे होंगे कि उनका कार्य भविष्य में मुख्यतः नरेन्द्र-द्वारा ही संचालित होगा। अन्य भक्तगण राखाल, भवनाथ, बलराम, मास्टर महाशय आदि थे। ये भक्तगण १८८२ के लगभग आये और इसके उपरान्त दो-तीन वर्षों में अनेक अन्य भक्त भी आये। इन सब भक्तों ने श्रीरामकृष्ण तथा उनके कार्य के लिये अपना जीवन अर्पित कर दिया।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, डॉ. महेन्द्रलाल सरकार, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, अमेरिका के कुक साहब, पं. पद्मलोचन तथा आर्य समाज के प्रवर्तक श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने भी आपके दर्शन किये थे।

ब्राह्मसमाज के अनेक लोग आपके पास आया-जाया करते थे। श्रीरामकृष्ण केशवचन्द्र सेन के ब्राह्ममंदिर को भी गये थे।

श्रीरामकृष्ण ने अन्य धर्मों की भी साधनाएँ कीं। उन्होंने कुछ दिनों तक इस्लाम धर्म का पालन किया और 'अल्लाह' मंत्र का जप करते-करते उन्होंने उस धर्म का अन्तिम ध्येय प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार उसके उपरान्त उन्होंने ईसाई धर्म की साधना की और ईसामसीह के दर्शन किये। जिन दिनों वे जिस धर्म की साधना में लगे रहते थे, उन दिनों उसी धर्म के अनुसार रहते, खाते, पीते, बैठते, उठते तथा बात-चीत करते थे। इन सब साधनाओं से उन्होंने यह दिखा दिया कि सब धर्म अन्त में एक ही ध्येय को पहुँचते हैं और उनमें आपस में विरोध-भाव रखना मूर्खता है। ऐसा महान् कार्य करनेवाले ईश्वरी अवतार श्रीरामकृष्ण ही थे।

इस प्रकार, ईश्वर-प्राप्ति के लिये कामिनी-कांचन का सम्पूर्ण त्याग तथा भिन्न भिन्न धर्मों में एकता की दृष्टि रखना इन्होंने अपने सभी भक्तों को सिखाया और उनसे उनका अभ्यास कराया। वे सारे भक्तगण आगे चलकर भारतवर्ष के अतिरिक्त अमेरिका आदि अन्य-देशों में भी गये और वहाँ उन्होंने श्रीरामकृष्ण के उपदेशों का प्रचार किया।

१६ अगस्त १८८६ के प्रातःकाल पाँच बजे गले के रोग से पीड़ित हो श्रीरामकृष्ण ने महासमाधि ले ली; परन्तु महासमाधि में गया केवल उनका पांचभौतिक शरीर। उनके उपदेश आज संसार भर में श्रीरामकृष्ण मिशन के द्वारा कोने-कोने में गूँज रहे हैं और उनसे असंख्य जनों का कल्याण हो रहा है।

विद्याभास्कर शुक्ल
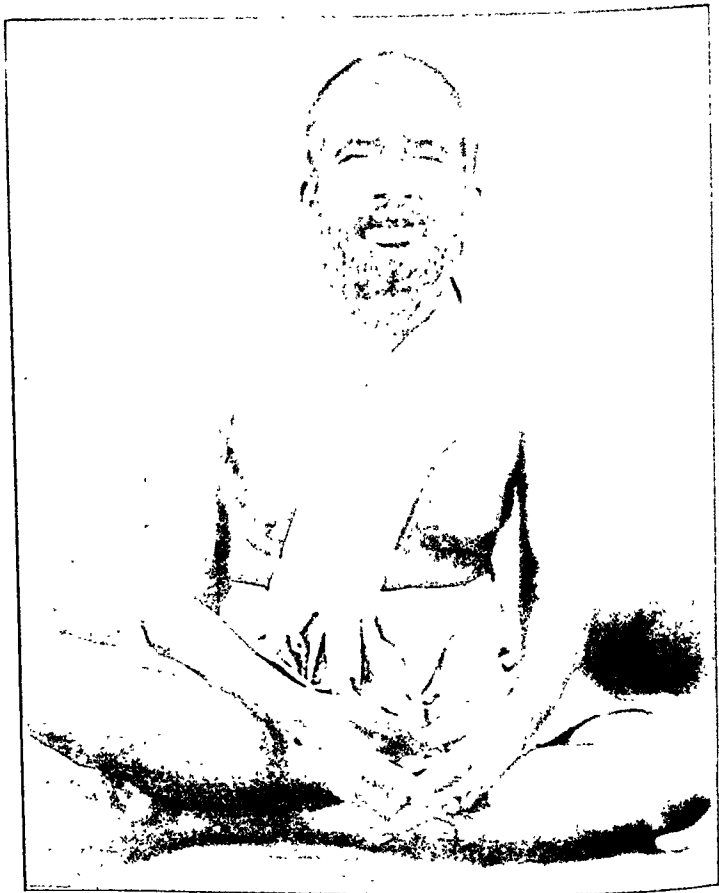
भगवान श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण-उपदेश

आत्मज्ञान

१. मनुष्य अपने आप को पहचानने से भगवान को पहचान सकता है। "मैं कौन हूँ?" भलीभाँति विचार करने पर मालूम होता है कि 'मैं' नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। हाथ, पैर, खून, मांस इत्यादि—इनमें से 'मैं' कौन है? जिस प्रकार प्याज़ का छिलका अलग करते-करते छिलका ही निकलता जाता है, शेष कुछ बचता ही नहीं, उसी तरह विचार करने पर 'अपनत्व' के नाम से कुछ भी बच नहीं रहता। अन्त में जो कुछ रहता है, वही आत्मा या चैतन्य है। 'अहम्-भाव' दूर हो जाने पर भगवान के दर्शन होते हैं।

२. 'मैं' दो तरह का होता है। एक है पक्का 'मैं' और दूसरा कच्चा 'मैं'। 'मेरा मकान' 'मेरा घर' 'मेरा लड़का'—यह सब कच्चा 'मैं' है। और पक्का 'मैं' है—'मैं उनका दास,' 'मैं उनकी सन्तान' और 'मैं वही नित्य-मुक्त ज्ञानस्वरूप हूँ।'

३. एक आदमी ने कहा, "मुझको ऐसा उपदेश दीजिये कि एक ही बात से मुझमें ज्ञान आ जाय।" उत्तर मिला, "'ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या' इसकी धारणा करो।"

४. शरीर के रहते 'मेरा' अथवा 'मैं-पन' पूर्ण रूप से मिट नहीं सकता, कुछ-न-कुछ रह ही जाता है; जैसे, नारियल के पेड़ की शाखायें अलग हो जाने पर भी पेड़ पर उनके निशान तो बने ही रहते हैं। परन्तु यह 'मैं-पन' नाम मात्र का है, और मुक्त पुरुष को बाँध नहीं सकता।

५. दिगम्बर तोतापुरी स्वामी से श्रीरामकृष्ण देव ने पूछा, "आपकी इस अवस्था में रोज़-रोज़ आपको ध्यान करने की क्या आवश्यकता है?" तोतापुरीजी ने उत्तर दिया, "लोटे को यदि रोज़ माँजा न जाय तो मैला पड़ जाता है; नित्य ध्यान न करने से चित्त में अशुद्धि आ जाती है।" तब श्रीरामकृष्ण देव ने कहा, "अगर लोटा सोने का हो तो काला न होगा।" अर्थात् सच्चिदानन्द के लाभ होने पर फिर साधना की आवश्यकता नहीं रह जाती।

६. विचार दो प्रकार का होता है—अनुलोम और विलोम। जैसे केले के स्तम्भ का छिलका और उसके भीतर का गूदा। अथवा, छिलके से गूदा और गूदे से छिलका। अर्थात्—छिलके आदि से सार वस्तु को और सार वस्तु से छिलके आदि असार वस्तु को पृथक् पृथक् देखना।

७. 'मैं' का बोध रहने से 'तुम' का भी बोध रहेगा जैसे, जिसे उजाले का ज्ञान है, उसे अँधेरे का ज्ञान भी अवश्य रहेगा जिसे अच्छे का ज्ञान है, उसे बुरे का भी ज्ञान होगा; जिसे पुण्य क ज्ञान है, उसे पाप का भी ज्ञान अवश्य होगा।

८. जैसे जूते पहनकर निःशङ्क काँटों के ऊपर से चला जा सकता है, उसी तरह 'तत्त्वज्ञान' का आवरण पहनकर मन इस काँटेदार संसार में विचरण कर सकता है।

९. एक साधु सदैव ज्ञानोन्माद अवस्था में रहते थे; किसी से बोलते न थे; और लोग भी उन्हें पागल समझते थे। एक दिन वे शहर से भिक्षा लाकर एक कुत्ते के ऊपर बैठकर वही भिक्षान्न खाने लगे और कुत्ते को भी खिलाने लगे। यह देखकर बहुत से लोग वहाँ इकट्ठे हो गये और कुछ लोग तो पागल कहकर उनकी हँसी उड़ाने लगे। यह देखकर साधु ने लोगों से पूछा, "तुम लोग हँसते क्यों हो!—

> विष्णूपरि स्थितो विष्णुः, विष्णुः खादति विष्णवे।
> कथं हससि रे विष्णो, सर्वं विष्णुमयं जगत्॥"

१०. जब तक 'वहाँ-वहाँ' (अर्थात् दूर या बाहर) है तब तक अज्ञान है, और जब 'यहाँ-यहाँ' है (अन्दर की ओर दृष्टि है) तभी ज्ञान है। जिसके लिये 'यहाँ' है (अर्थात् भगवान हृदय में हैं ऐसा जिसे अनुभव हो रहा है), उसके लिये 'वहाँ' भी है (अर्थात् भगवत्-चरणों में स्थान है)।

ईश्वर

१. भगवान सबके भीतर किस प्रकार विराजते हैं ?—जैसे चिक की आड़ में बड़े घराने की स्त्रियाँ; वे सबको देखती हैं पर उनको कोई नहीं देख पाता। भगवान भी इसी प्रकार सबमें विद्यमान हैं।

२. प्रदीप या दीपक का काम है प्रकाश देना; कोई तो उसकी सहायता से रसोई बनाता है; कोई जाली कार्रवाई करता है; और कोई रामायण या अन्य सद्ग्रन्थ पढ़ता है। पर ये सब क्या प्रकाश के गुण-दोष कहे जा सकते हैं ? कोई तो भगवान का नाम लेकर मुक्ति के लिए चेष्टा करता है; और कोई वही नाम लेकर चोरी करता है अथवा पाखण्ड रचता है, तो यह सब क्या भगवान के दोष कहे जा सकते हैं ?

३. जैसी जिसकी भावना, वैसी उसकी प्राप्ति; भगवान कल्प-वृक्ष के समान हैं। उनसे जो कुछ प्रार्थना की जाती है, वही प्राप्त होता है। गरीब का लड़का हाईकोर्ट का जज बनकर समझता है 'मैं बड़ी अच्छी तरह से हूँ।' भगवान भी तब कहते हैं, 'तुम अच्छी तरह से ही रहो।' फिर जब पेन्शन लेकर घर में बैठता है तब सोचता है 'इस जीवन में मैंने क्या किया ?' भगवान भी तब कहते हैं, 'हाँ, ठीक ही तो है, तुमने किया क्या ?'

४. ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं; ब्रह्म जब सर्वकर्मरहित अवस्था में रहते हैं तब उनको ब्रह्म या शुद्ध ब्रह्म कहा जाता है। और

जब सृष्टि, स्थिति और प्रलय इत्यादि करते हैं तब ये सब उनकी शक्ति के कार्य कहे जाते हैं।

५. भगवत्प्रसंग में एक दिन मथुरबाबू ने श्रीरामकृष्ण देव से कहा, "भगवान को भी संसार के नियमों का अनुवर्तन करना पड़ता है। वे भी अपनी खुशी से सब कुछ नहीं कर सकते।" श्रीरामकृष्ण देव ने पूछा, "यह कैसे? वे तो इच्छामय प्रभु हैं, इच्छामात्र से सभी कुछ कर सकते हैं।" मथुरबाबू ने फिर पूछा, "क्या वे अपनी खुशी से इस लाल जवा फूल के पेड में सफेद फूल खिला सकते हैं?" श्रीरामकृष्ण देव ने कहा, "क्यों नहीं खिला सकते? उनकी खुशी हो तो इस लाल जवा के पेड़ में सफेद ज.. अवश्य ही खिल सकता है।" परन्तु मथुर को इस बात पर उतना विश्वास नहीं हुआ। पर वास्तव में, कुछ दिनों बाद ही, वहाँ दक्षिणेश्वर में, देवीजी की पुष्पवाटिका में, एक ही लाल जवा के पेड़ में एक शाखा पर लाल फूल और दूसरी शाखा पर सफेद फूल खिले हुए थे। श्रीरामकृष्ण देव ने जब यह देखा तो मूल-सहित दोनों शाखाओं को ले आये और मथुर को दिखाया। तब तो मथुर बड़े आश्चर्यचकित हुए और कहने लगे, "बाबा, अब आज से मैं आपके साथ और कभी तर्क नहीं करूँगा।"

६. साकार और निराकार ये दोनों किस प्रकार हैं?— जैसे जल और बरफ़। जब जल जम जाता है तब बरफ़ कहलाता है और साकार हो जाता है। और जब गलकर जल हो जाता है तब निराकार कहलाता है।

७. जो साकार है, वही निराकार। साकार रूप से वही भक्तों को दर्शन देता है। जैसे, महासमुद्र में केवल अनन्त जलराशि होती है, उसका कूल-किनारा कुछ नहीं; परन्तु कहीं-कहीं अत्यन्त ठंडक पड़ने के कारण पानी जमकर बर्फ़ के रूप में दिखाई देता है, उसी प्रकार भक्तों के भक्तिरूपी हिम से निराकार परमात्मा का भी साकार रूप में दर्शन होता है। फिर, सूर्यनारायण के उदय होते ही जैसे बर्फ़ गल जाता है और पहले की भाँति जलमात्र ही रह जाता है, वैसे ही ज्ञानरूपी सूर्य भगवान के प्रकाशित होने पर साकाररूप बर्फ़ पिघलकर केवल जलरूप निराकार ही विद्यमान रहता है।

८. जब भीष्म पितामह देह-त्याग के समय शर-शय्या पर पड़े हुए थे तब एक दिन उनके नेत्रों से आँसू निकलते देख अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा, "हे सखे! बड़े आश्चर्य की बात है कि पितामह, जो सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ज्ञानी और अष्ट वसुओं में से एक हैं, शरीर त्यागते समय माया (ममता) से रो रहे हैं।" भगवान श्रीकृष्ण ने जब यह बात भीष्म पितामह से कही तो उन्होंने कहा, "भगवन्, आप तो अच्छी तरह जानते हैं कि मैं ममता के कारण नहीं रो रहा हूँ; मेरे रोने का कारण यह है कि भगवान की लीला मैं आज तक कुछ भी समझ न सका। जिनका नाममात्र जपने से मनुष्य अनेकानेक विपदाओं से तर जाता है, वे ही भगवान श्रीमधुसूदन, पाण्डवों के सारथी और सखारूप में विद्यमान हैं, पर फिर भी पाण्डवों की विपदाओं का अन्त नहीं होता।"

९. श्रीरामकृष्ण देव एक दिन त्रैलंग स्वामी के दर्शन को गये। उन्होंने पूछा, "ईश्वर एक हैं; फिर लोग उन्हें अनेक क्यों बतलाते हैं?" त्रैलंग स्वामी ने, मौन-व्रत होने के कारण, इशारे से समझाया कि भगवान का ध्यान करने से पता चलता है कि वे एक ही हैं पर विचार करते ही 'नानात्व'–बुद्धि आकर घेर लेती है।

माया

१. माया का स्वभाव कैसा है?—जैसे पानी के ऊपर की काई। हटाने पर सब काई हट जाती है, फिर थोड़ी देर बाद ही वह अपने-आप फैल जाती है। उसी प्रकार, जब तक विचार कीजिये अथवा जब तक साधु-सत्संग कीजिये, कोई विकार नहीं रहता। पर उसके थोड़ी देर बाद ही विषयवासना चित्त को ढक लेती है।

२. साँप के दाँतों में विष है; वह जब स्वयं खाता है तब विष उस पर प्रभाव नहीं करता। परन्तु जब वह दूसरे को काटता है तब विष उस व्यक्ति पर प्रभाव कर जाता है। इसी प्रकार, भगवान में माया है तो अवश्य, पर वह उनको मुग्ध नहीं कर सकती, लेकिन दूसरों को वशीभूत कर लेती है।

३. माया किसे कहते हैं? बाप, माँ, भाई, स्त्री, पुत्र, भाँजा, भतीजा—इन सब पर जो मोह है, वही माया है और दया का अर्थ है सर्व भूत मे हमारे हरि विराजमान हैं यह समझकर सबसे बराबर प्रेम करना।

४. जिस पर भूत आता है, वह यदि जान जाय कि भूत आया है तो भूत भाग जाता है। मायामुग्ध जीव यदि एक बार ठीक से जान ले कि वह माया-द्वारा ग्रसित है तो माया उसे शीघ्र ही छोड़ जाती है।

५. जीवात्मा और परमात्मा के बीच में माया का परदा है। यह परदा न हटने से आपस में भेंट नहीं हो सकती। जैसे

आगे-आगे राम, बीच में जानकी और पीछे-पीछे लक्ष्मण जा रहे हैं। यहाँ पर राम को परमात्मा समझ लो और लक्ष्मण को जीवात्मा। बीच में जानकी मायारूपी परदा हैं। जब तक जानकी बीच में हैं तब तक लक्ष्मण रामचन्द्रजी को नहीं देख सकते। यदि जानकी थोड़ा हट जायँ तो लक्ष्मण को राम के दर्शन हो जायँ।

६. माया दो प्रकार की होती है—एक विद्या और दूसरी अविद्या; फिर विद्यारूपी माया भी दो प्रकार की होती है, १—विवेक, २—वैराग्य। इस विद्यारूपी माया का अवलम्बन करके जीव भगवान की शरण में आता है। अविद्यारूपी माया छः प्रकार की होती है—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर। अविद्यारूपी माया 'मैं' और 'मेरा' के बोध-द्वारा मनुष्यों को बाँध रखती है। पर विद्यारूपी माया के प्रकाश से जीव की अविद्या एकदम नष्ट हो जाती है।

७. जैसे जब तक पानी गन्दा रहता है तब तक चन्द्र या सूर्य की परछाई उसमें ठीक-ठीक दिखलाई नहीं पड़ती, उसी प्रकार माया अर्थात् 'मैं' और 'मेरा' यह भाव जब तक दूर न हो जाय, तब तक आत्मा का ठीक-ठीक साक्षात्कार नहीं हो सकता।

८. जिस प्रकार इतना बड़ा सूर्य पृथ्वी को प्रकाशित किए रहता है, परन्तु मामूली बादल के छोटे-छोटे टुकड़ों के आते ही दिखलाई नहीं पड़ता, उसी प्रकार सर्वव्यापी और प्रकाशस्वरूप सच्चिदानन्द को हम मामूली माया के परदे के कारण देख नहीं पाते।

९. तालाब की काई हटाने पर वह फिर से अपने-आप फैल जाती है, इसी प्रकार माया को एक बार हटाने पर फिर से वह आ घेरती है। पर यदि काई को हटाकर बाँस का बेड़ा बाँध दिया जाय तो काई बाँस को पार करके दुबारा नहीं आ सकती। इसी तरह माया को हटाकर सद्ज्ञान और भक्ति का बेड़ा लगाये रखने से माया अपने अन्दर नहीं घुस सकती। ऐसी अवस्था में शुद्ध सच्चिदानन्द का ही तेज अन्तरात्मा को प्रकाशित करता रहता है।

१०. दक्षिणेश्वर-मन्दिर के नौबतखाने में एक साधु आकर रहे थे। वे महात्मा किसी के साथ बातचीत आदि न करके सर्वदा ध्यान-भजन में ही मग्न रहा करते थे। एक दिन अचानक बादल उठने से चारों ओर अँधेरा छा गया, थोड़ी ही देर बाद फिर ज़ोरदार हवा आई और बादल हट गये। यह देखकर महात्मा बाहर निकलकर नौबतखाने के बरामदे में जाकर हँसने और नाचने लगे। उन्हें इस दशा में देखकर श्रीरामकृष्ण देव ने उनसे कहा, "तुम तो घर के अन्दर चुपचाप बैठे रहते हो, आज इतना आनन्द कैसे मना रहे हो?" साधु बोले, "संसार की माया ऐसी ही है—पहले आसमान साफ़ था, अकस्मात् बादलों ने आकर अँधेरा कर दिया, फिर थोड़ी देर में जैसा पहले था, वैसा ही हो गया।"

अवतार

१. जब बड़े बड़े शहतीर पानी के ऊपर एक साथ तैरते हैं, तो उनके ऊपर चढ़कर कितने ही मनुष्य नदी को पार कर सकते हैं; उनके बोझ से वे डूबते नहीं। पर एक छोटी सी लकड़ी के टुकड़े पर यदि कौआ भी बैठ जाय तो वह डूब जाती है। इसी प्रकार, जब भगवान के अवतारों का आविर्भाव होता है तो कितने ही हज़ारों लाखों मनुष्य उनके आश्रय से तर जाते हैं। परन्तु साधारन सिद्ध पुरुष किसी तरह केवल खुद ही पार हो सकता है।

२. रेल का इञ्जिन स्वयं भी आगे बढ़ता है और कितनी ही मालगाड़ियों को भी अपने साथ खींच ले जाता है। अवतार भी उसी प्रकार हज़ारों लाखों मनुष्यों को ईश्वर के निकट पहुँचा देते हैं।

जीव के अवस्था-भेद

१. मनुष्य मानो तकिये के गिलाफ़ हैं। ऊपर से देखने में कोई गिलाफ़ लाल है तो कोई काला; परन्तु सबके भीतर रुई ही है। उसी प्रकार देखने में कोई मनुष्य सुन्दर है तो कोई काला; कोई महात्मा है तो कोई दुराचारी; पर सबके भीतर वही परमात्मा विराजमान है।

२. संसार में दो प्रकार के स्वभाववाले मनुष्य पाये जाते हैं। कुछ तो सूप की तरह स्वभाववाले होते हैं और कुछ चलनी की तरह। सूप जिस प्रकार भूसी इत्यादि असार वस्तुओं का त्याग करके सार-युक्त वस्तुओं को ग्रहण करता है, जैसे अनाज इत्यादि, उसी प्रकार कुछ लोग संसार की असार वस्तुओं (कामिनी, काञ्चन आदि) को छोड़कर सार-युक्त बात अर्थात् भगवान को ग्रहण करते हैं। और चलनी जिस प्रकार सार-युक्त वस्तुओं को निकालकर असार वस्तुओं को अपने में रख लेती है, उसी प्रकार संसार के कुछ पुरुष सार-युक्त वस्तु ईश्वर का त्याग कर कामिनी-काञ्चनादि को ग्रहण करते हैं।

३. विषयी पुरुषों का मन गोबर के कीड़े की भाँति होता है। यह कीड़ा गोबर में ही रहना अधिक पसन्द करता है। यदि गोबर छोड़कर उसे और कुछ भी दिया जाय तो उसे पसन्द नहीं आता। यदि ज़बरन उसे कुछ दिया भी जाय, तो भी उसे अच्छा नहीं लगता। यदि वह गोबर के स्थान में पद्म में रख दिया

जाय तो छटपटाया करता है। विषयी पुरुषों का मन इसी प्रकार विषय वासना की बातों के सिवाय अन्य किसी प्रकार की वार्तों में नहीं लगता। यदि ईश्वरी कथा उन्हें बतलाई जाय तो वे उस स्थान को त्यागकर जहाँ विषय की बातें होती हैं वहाँ चले जाते हैं।

४. कुछ मछलियाँ ऐसी होती हैं जो जाल में पड़ने पर भी भागने की बिलकुल चेष्टा नहीं करतीं और चुपचाप पड़ी रहती हैं, कुछ दूसरी होती हैं जो इधर-उधर छटपटाती हैं पर भाग नहीं पातीं। फिर एक तीसरे प्रकार की मछलियाँ भी होती हैं जो जाल को काटकर भाग जाती हैं। इसी प्रकार सांसारिक जीव भी तीन प्रकार के होते हैं; बद्ध जीव, मुमुक्षु जीव, और मुक्त जीव।

५. रास्ते में चलते-चलते रात हो जाने से तथा आसमान में बादल और तूफ़ानी हवा देखकर किसी एक मछलीवाली ने एक मालिन के घर का आश्रय लिया। मालिन ने उसे पुष्प-गृह के बरामदे में ठहराया और यथा-योग्य उसकी सेवा की, परन्तु मछलीवाली को किसी प्रकार नींद नहीं आई। अन्त में वह समझ गई कि पुष्प-गृह में रखे हुए नाना प्रकार के खिले हुए फूलों की महक से ही उसे नींद नहीं आ रही है। तब उसने मछलियों की टोकरी में जल छिड़ककर उसे सिरहाने रख लिया और फिर सुख से सो गई। इसी प्रकार, मछलीवाली की भाँति विषयी और बद्ध मनुष्यों को संसार की सड़ी दुर्गन्ध को छोड़कर और कुछ अच्छा नहीं लगता।

६. कबूतर के बच्चे का गला ऊपर से टटोलने पर जैसे गले में भरे हुए मटर के दाने साफ़ मालूम पड़ जाते हैं, उसी तरह विषयी

पुरुषों से बातचीत करते ही उनमें भरी हुई विषयवासनायें स्पष्ट हो जाती हैं। विषय की बातें तो उन्हें भली मालूम होती हैं किन्तु धर्म की बातें अच्छी नहीं लगतीं।

७. यदि किसी ने मूली खाई हो तो उसकी डकार से ही पता चल जाता है। इसी प्रकार, धार्मिक पुरुष से भेंट होने पर धर्म की ही बातें हुआ करती हैं पर जो विषयी लोग हैं, वे केवल विषय की ही बातें किया करते हैं।

८. दो प्रकार की मक्खियाँ होती हैं। एक तो शहद की मक्खियाँ, जो शहद के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं खातीं और दूसरी साधारण मक्खियाँ, जो शहद पर भी बैठती हैं और यदि सड़ता हुआ घाव दिखलाई पड़े तो तुरन्त शहद को छोड़कर उस पर भी जा बैठती हैं। इसी प्रकार, दो तरह के स्वभाव के लोग होते हैं; एक जो ईश्वर में अनुराग करते हैं, वे ईश्वर की चर्चा के सिवाय कोई दूसरी बात करते ही नहीं, और दूसरे जो संसार में आसक्त जीव हैं, वे ईश्वर की बात सुनते-सुनते यदि किसी स्थान पर विषय की बातें होती हों तो तुरन्त भगवान की चर्चा छोड़कर उसी में संलग्न हो जाते हैं।

९. संसारी जीव स्वयं तो हरिनाम सुनते नहीं, बल्कि दूसरों को भी नहीं सुनने देते। वे धर्म और धार्मिक पुरुषों की निन्दा किया करते हैं। कोई यदि ईश्वर के ध्यान में मग्न हो तो वे उसकी हँसी उड़ाते हैं।

१०. यदि मगर के ऊपर किसी शस्त्र-द्वारा वार किया जाय तो उससे मगर का कुछ भी नहीं होता, बल्कि शस्त्र ही छटककर

अलग जा गिरता है। इसी प्रकार, संसारी जीवों के बीच धर्मचर्चा कितनी ही क्यों न की जाय, उनके हृदय पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता।

११. सूर्य की किरणें सर्वत्र समान होने पर भी दर्पण और स्वच्छ पदार्थों पर विशेष रूप से प्रकाशित होती हैं। भगवान का प्रकाश प्रत्येक जीव में समान होने पर भी महात्माओं के हृदय में विशेष रूप से पड़ता है।

१२. जिस प्रकार विभिन्न पकवान ऊपर से एक ही आटे के बने होते हैं, परन्तु पीठी (नारियल, खोआ, दाल आदि) के भेद से अलग-अलग नाम और स्वाद के हो जाते हैं, उसी प्रकार सभी मनुष्य (पंचभौतिक उपादानों की दृष्टि से) समान जाति के होने पर भी गुण-भेद से भिन्न-भिन्न होते हैं।

१३. "आपो नारायणः"—सभी प्रकार का पानी नारायण का रूप है; परन्तु प्रत्येक स्थान का जल पीने के योग्य नहीं होता। कोई जल पिया जाता है, किसी में पैर धोये जाते हैं और किसी को स्पर्श तक नहीं किया जाता। इसी प्रकार, परमात्मा सर्वत्र हैं, पर हर स्थान पर जाना उपयुक्त नहीं। किसी स्थान पर जाना चाहिये और किसी स्थान को दूर से ही प्रणाम करके भाग जाना चाहिये।

१४. शेर के अन्दर भी परमात्मा विराजमान हैं, पर इसी कारण उसके सामने नहीं चले जाना चाहिये। दुष्ट मनुष्यों में भी ईश्वर मौजूद हैं, पर इसीलिये उनका साथ करना उचित नहीं।

१५. गुरुजी ने एक शिष्य को उपदेश दिया कि सभी जीवों में जगदीश्वर का वास है। शिष्य ने भी ऐसा ही समझ लिया। एक दिन रास्ते से एक हाथी आ रहा था; उसके महावत ने कहा, "हट जाओ।" शिष्य ने सोचा, "मैं क्यों हटूँ? मैं भी नारायण, हाथी भी नारायण, फिर डर किस बात का?" यह सोचकर वह वहाँ से नहीं हटा। अन्त में हाथी ने उसे सूँड़ से उठाकर दूर फेंक दिया। इससे उसे बड़ी चोट आई। इसके पश्चात् उसने गुरुजी से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इस पर गुरुजी ने कहा, "भली कही! यह ठीक है कि तुम नारायण हो और हाथी भी नारायण है; पर ऊपर बैठे हुए महावतरूपी नारायण की बात तुमने क्यों नहीं सुनी?"

१६. साधु पुरुषों का क्रोध कैसा है, जानते हो?—जैसे पानी पर की लकीर। जैसे पानी पर लकीर खींचने से वह शीघ्र ही मिट जाती है, उसी प्रकार सन्त जनों का क्रोध आते ही ठण्डा पड़ जाता है।

१७. यह ठीक है कि ब्राह्मण के घर में जन्म लेने से सभी ब्राह्मण होते हैं; किन्तु उनमें कोई तो बड़े पण्डित होते हैं, कोई पुजारी होते हैं, कोई रसोई बनाते हैं और कोई वेश्याओं के दरवाज़ों पर भटकते फिरते हैं।

१८. जैसे कसौटी पर सोना या पीतल को घिसते ही उसके भेद का पता चल जाता है, उसी प्रकार भगवान के निकट सरलता या कपटता का पता शीघ्र ही चल जाता है।

१९. मनुष्य दो प्रकार के होते हैं। एक तो मानुष और दूसरे 'मन-होश'। जो मनुष्य भगवान के लिये व्याकुल होते हैं, वे 'मन-होश' हैं और जो कामिनी-काञ्चन (विषय) में उन्मत्त रहते हैं, वे (साधारण) मानुष हैं।

२०. बद्ध सांसारिक जीवों को किसी भी तरह होश नहीं होता। संसार के नाना दुःख-कष्टों और विपत्तियों में पड़े रहने पर भी उनको चैतन्य नहीं होता। जिस प्रकार काँटेदार बबूल को खाते-खाते ऊँट के मुँह से धर-धर खून की धारा बहने लगती है, पर फिर भी वह काँटेदार बबूल खाना नहीं छोड़ता, उसी प्रकार सांसारिक पुरुष विषयवासना से अत्यन्त दुःख-कष्ट भोगने पर भी विषयवासना के लालच को नहीं छोड़ता।

२१. वाचाल, कपटी, दम्भी, लम्बी तिलक और रुद्राक्ष माला धारण करनेवाले ढोंगी, लम्बा घूँघट काढ़नेवाली स्त्रियाँ, एवं काई-वाले तालाब का ठण्डा जल, ये बहुत हानिकारक होते हैं। ऐसे लक्षण जिनमें हों, उनसे सावधान रहना चाहिये।

गुरु

१. गुरु एक ही होता है; परन्तु उपगुरु बहुत से हो सकते हैं। जिनसे कुछ शिक्षा प्राप्त हो, उन्हें उपगुरु कहा जा सकता है। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि अवधूत मुनि ने इस प्रकार चौबीस उपगुरु किये थे।

२. एक दिन मैदान में जाते-जाते अवधूत ने देखा कि सामने बड़ी शान के साथ बाजा-गाजा बजाते हुए एक बरात चली आ रही है और एक तरफ एक व्याध एकाग्र-चित्त होकर अपने लक्ष्य की ओर निशाना बाँधे बैठा है। बरात के संग जो गाना-बजाना हो रहा था, उसकी ओर उस व्याध ने एक बार भी नहीं देखा। अवधूत ने तब उस व्याध को नमस्कार करके कहा, "आप मेरे गुरु हैं। मैं जब कभी भगवान का ध्यान करने बैठूँ तब उनकी ओर मेरा चित्त इसी तरह एकाग्र रहे।"

३. एक मछुआ मछली पकड़ रहा था। अवधूत ने उसके पास जाकर पूछा—"भाई, अमुक स्थान को जाने का कौनसा रास्ता है!" वह व्यक्ति उस समय मछली पकड़ने में मस्त था। अवधूत के प्रश्न का कोई उत्तर न दे वह बंसी की ओर एकटक देख रहा था। जब मछली काँटे में आ फँसी, तब उसने मुड़कर कहा, "हाँ, आप क्या कह रहे थे?" अवधूत ने उसे प्रणाम करके कहा, "आप मेरे गुरु हैं, मैं जब इष्टदेव के ध्यान में बैठूँ, तब कार्य सिद्ध होने तक मेरा मन इसी प्रकार दूसरी ओर न जाय।"

४. एक चील को चोंच में एक मछली दबाये हुए आते देखकर सैकड़ों कौवे और चील उसका पीछा करने लगे और उसे टोंच-टोंचकर मछली छीनने का प्रयत्न करने लगे। वह चील जिधर-जिधर जाती थी, ये सब कौवे काँव-काँव करते हुए उधर-उधर ही जाते थे। अन्त में विवश होकर उसने मछली फेंक दी। फिर एक दूसरी चील ने ज्योंही उसे उठाया, त्योंही कौओं और चीलों के झुण्ड ने पहली चील को छोड़कर उस दूसरी चील का पीछा किया। पहली चील निश्चिन्त होकर एक पेड़ की डाली पर चुपचाप बैठ गई। अवधूत ने उसकी इस निरापद अवस्था को देखकर उसे प्रणाम किया और बोले, "इस संसार के झंझटों को दूर करने से ही शान्ति मिल सकती है; नहीं तो बड़ी विपत्तियों का सामना करना पड़ता है।"

५. किसी जलाशय में एक बगुला धीरे-धीरे एक मछली की ओर लक्ष्य लगाकर उसे पकड़ने जा रहा था और उसके पीछे से एक व्याध भी उस बगुले पर लक्ष्य कर रहा था, पर बगुले की उस ओर तनिक भी दृष्टि नहीं थी। अवधूत ने उस बगुले को नमस्कार किया और कहा, "जब मैं परमात्मा के ध्यान में बैठूँ, तब इसी प्रकार मैं भी किसी ओर न देखूँ।"

६. अवधूत ने शहद की मक्खी को भी गुरु के रूप में माना था। मधुमक्खी बहुत दिन तक लगातार कष्ट उठाकर शहद इकट्ठा करने लगी। कहीं से एक मनुष्य आया और उसके छत्ते को तोड़कर उसका शहद चाट गया। बहुत दिनों का इकट्ठा किया हुआ शहद वह मक्खी स्वयं अपने कार्य में न ला सकी। यह देखकर अवधूत ने उस मधुमक्खी को नमस्कार करके कहा, "आप हमारे

गुरु हैं; सञ्चय करने का क्या परिणाम होता है, इसकी शिक्षा आप से ही मुझे मिली है।"

७. "गुरु मिले लाख-लाख, चेला मिले न एक।" उपदेशक तो बहुत मिलते हैं, पर उपदेश के अनुसार ठीक-ठीक आचरण करने-वाले शिष्य इने-गिने ही मिलते हैं।

८. यदि किसी के हृदय में ठीक-ठीक अनुराग पैदा हो और साधक ध्यान-भजन की आवश्यकता समझने लगे, तो निश्चय ही भगवान साधक को सद्गुरु से मिला देते हैं। साधक को सद्गुरु के लिये चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।

९. वैद्य तीन प्रकार के होते हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। जो वैद्य केवल नाड़ी देखकर "यह लो दवा, खा लेना" कहकर चला जाता है, वह अधम श्रेणी का होता है। जो मीठी बातों-द्वारा रोगी को समझाता है कि औषधि-सेवन से लाभ ही होगा, वह मध्यम श्रेणी का होता है। और जो रोगी को किसी प्रकार से भी औषधि-सेवन करता न देख उसके सीने पर सवार हो मुँह खोलकर उसे दवा खिला देता है, वह उत्तम श्रेणी का होता है। इसी प्रकार जो गुरु या आचार्य धर्म-शिक्षा देकर शिष्य की कोई खबर नहीं रखते, वे अधम गुरु हैं। जो शिष्य के मंगल के निमित्त बारम्बार प्यार से समझाते रहते हैं जिससे शिष्य उनके उपदेश धारण करे, वे मध्यम प्रकार के होते हैं। और जो यह देखकर कि शिष्य ठीक-ठीक उनके उपदेशों का पालन नहीं करता, उसके ऊपर ज़बरदस्ती तक करते हैं, उनकी गणना उत्तम गुरुओं में होती है।

धर्म अनुभव की वस्तु है

(पाठ या विचार की नहीं)

१. शास्त्र-विचार कब तक आवश्यक है, जानते हो ? जब तक सच्चिदानन्द भगवान से साक्षात् न हो जाय। जैसे, भौंरा जब तक फूल पर नहीं बैठता, तभी तक गुञ्जार किया करता है; और जब फूल के ऊपर बैठकर मधु-पान करने लगता है तब तो एकदम चुप हो जाता है—फिर किसी प्रकार का शब्द नहीं करता।

२. स्वर्गीय महात्मा केशवचन्द्र सेन ने श्रीरामकृष्ण देव से एक दिन पूछा, "बहुत से पण्डित लोग अनेक शास्त्रों का पाठ करते हैं, पर उनको ज्ञान-लाभ क्यों नहीं होता ?" श्रीरामकृष्ण देव ने उत्तर दिया, "चील-गिद्ध उड़ने तो बहुत ऊँचे पर हैं, किन्तु उनकी दृष्टि पृथ्वी पर पड़े हुए सड़े मांस के टुकडे पर ही रहती है। अनेक शास्त्रों का पाठ करने से ही क्या होगा ? उनका मन तो सदैव कामिनी-काञ्चन में आसक्त रहता है। इसीलिए उन्हें ज्ञानलाभ नहीं होता।

३. श्रीरामकृष्ण देव का कथन है, "ग्रन्थ तो ग्रन्थ का काम न करके ग्रन्थि (गाँठ) का ही काम करते हैं। विवेक-वैराग्ययुक्त अन्तःकरण से यदि ग्रन्थों का पाठ न किया जाय तो हृदय में दाम्भिकता, अहंकार आदि की गाँठ ही पक्की होती जाती है।"

४. श्रीरामकृष्ण देव ने किसी एक तार्किक से कहा था, "एक बात में यदि तुम्हारा समाधान हो सके तो मेरे पास आना;

और अनेक तर्क-युक्ति से समझना चाहो तो केशव (केशवचंद्र स
के पास जाना।"

५. जैसे खाली गडुए में पानी भरते समय 'भक्' 'भ
शब्द होता है, पर भर जाने पर किसी प्रकार का शब्द नहीं हो
उसी प्रकार जिन्हें भगवान प्राप्त नहीं हुए हैं, वे ही भगव
के सम्बन्ध में नाना प्रकार के तर्क-वितर्क किया करते हैं, और
भगवान का दर्शन-लाभ कर लेते हैं, वे शान्त और स्थिर हो
परमानन्द का भोग करते हैं।

६. विवेक और वैराग्य के बिना शास्त्र पढ़ना व्यर्थ है
विवेक-वैराग्य के बिना धर्म-लाभ नहीं होता। सत् और अ
का विचार करके सद्वस्तु ग्रहण करना, यही विवेक है। देह पृ
है और आत्मा पृथक्, ऐसी विचार-बुद्धि का नाम विवेक है।
'वैराग्य' है विषयवासनाओं से सम्पूर्ण विरक्ति।

७. पंचांग में लिखा है कि यथेष्ट वर्षा होगी, परन्तु स
पंचांग को निचोड़ने पर एक बूँद भी जल नहीं निकल
उसी प्रकार पोथियों में अनेक धर्म-विषयक बातें लिखी हैं, पर के
पढ़ने से ही कोई लाभ नहीं होता, साधना की आवश्यकता होती

८. एक बगीचे दो आदमी घूमने गये। उनमें जिस
सांसारिक बुद्धि प्रबल थी, वह विचार करने लगा कि उस बाग
कितने आम के पेड़ हैं और उनमें कितने आम लगे हैं, अथवा ब
का मूल्य क्या हो सकता है,' आदि-आदि। और दूसरा आदमी ब

के मालिक के साथ दोस्ती कर पेड़ के नीचे बैठकर एक-एक करके आम तोड़ता गया और खाता गया। अब कहो, इनमें कौन बुद्धिमान है ? आम खाओ तो पेट भरेगा, केवल आम गिनने और पत्तों का हिसाब-किताब करने में क्या रखा है ? जो लोग ज्ञानाभिमानी हैं, शास्त्र मीमांसा व तर्क-युक्ति में ही फँसे रहते हैं, वे आम गिननेवाले के समान हैं। बुद्धिमान भक्तजन भगवान की कृपा से इस संसार में परम सुख प्राप्त करते हैं और वे आम खानेवाले के समान सुखी रहते हैं।

९. जहाँ हाट लगा हो, वहाँ से दूर खड़े होने पर केवल 'हू हा' शब्द सुनाई देता है। जब तक भीतर न प्रवेश किया जाय तब तक 'हू हा' शब्द का स्पष्ट रूप ठीक समझ में नहीं आता। भीतर प्रवेश करने पर पता चलता है कि कोई सौदा कर रहा है और कोई पैसे देकर वस्तुएँ ख़रीद रहा है। इसी प्रकार, जगत् के बाहर रहकर धर्म-भाव का स्पष्ट रूप कुछ भी समझ में नहीं आ सकता।

१०. इस संसार में सब वस्तुएँ जूठी हो चुकी हैं। केवल एक ब्रह्म ही जूठा नहीं हो सका है। वेद, पुराण इत्यादि सब, मनुष्य के मुख से बोले जाने के कारण, जूठे हो चुके हैं। किन्तु ब्रह्म क्या वस्तु है, यह कोई भी अब तक मुख से बता नहीं सका है।

११. जैसे बालक को रमण-सुख क्या है यह नहीं समझाया जा सकता, उसी प्रकार विषयासक्त मायायुक्त संसारी जीव को ब्रह्मानन्द नहीं समझाया जा सकता।

१२. ढोलक या तबले के भिन्न-भिन्न शब्दों के बोल मुख से निकालना सहज है; किन्तु उसे बजाना कठिन है। इसी प्रकार, धर्म की बातें कहना तो सहज है किन्तु कार्यरूप में परिणत करना कठिन है।

१३. रामचन्द्र नाम का एक ब्रह्मचारी श्रीरामकृष्ण देव के दर्शन करने आया। आकर वह बैठ गया और कोई बातचीत न कर केवल 'शिवोऽहम् शिवोऽहम्' रटने लगा। कुछ देर चुप रहने के बाद श्रीरामकृष्ण देव ने कहा, "केवल शिवोऽहम् करने से क्या होगा? जब सच्चिदानन्द शिव का हृदय में ध्यान करने से तन्मयता प्राप्त हो जाय, तभी 'शिवोऽहम्' कहना उचित है। नहीं तो केवल मुख से शिवोऽहम् कहने से क्या होगा? जब तक ऐसी अवस्था न हो जाय तब तक सेव्य-सेवक भाव ही अच्छा है।" श्रीरामकृष्ण देव के ऐसे उपदेश-द्वारा उस ब्रह्मचारी को चैतन्य हो गया और जाते समय वह दीवाल में लिख गया, "श्रीरामकृष्ण देव के उपदेश से ब्रह्मचारी रामचन्द्र को आज से सेव्य-सेवक भाव प्राप्त हुआ।"

संसार और साधना

१. लुकी-लुकौअल खेलते समय जैसे ढाई को छू लेने पर चोर नहीं माना जाता, वैसे ही भगवान के पाद-पद्म छू लेने से फिर मनुष्य संसार में नहीं फँस सकता। संसार में जिन्होंने ईश्वर का आश्रय लिया है, वे किसी विषय में फिर नहीं फँसते।

२. गाँव में मछली पकड़ने के लिए नाले के किनारे अथवा खेत में एक विशेष प्रकार का गड्ढा बनाया जाता है। छोटी-छोटी मछलियाँ उस गड्ढे के जल की झलक को देख आनन्द से उसमें घुस जाती हैं परन्तु फिर उसमें से बाहर नहीं निकल सकतीं—उसी में उलझ जाती हैं। कभी-कभी दो-एक मछलियाँ गड्ढे के किनारे पर आकर, उसे देख, उछलकर दूसरी ओर चली जाती हैं। इसी प्रकार, संसार की बाहरी चमक देखकर लोग उसमें प्रवेश कर जाते हैं, परन्तु बाद में माया-मोह में फँसकर बड़ा दुःखक्लेश भोगते हुए नष्ट हो जाते हैं। परन्तु जो लोग संसार की इस दशा को देखकर काम-काञ्चन आदि विषयों में आसक्त न हो भगवान के श्रीचरणों का आश्रय लेते हैं, वे ही यथार्थ सुख और आनन्द पाते हैं।

३. भक्तकवि रामप्रसाद ने कहा है कि यह संसार 'धोखे की टट्टी' है, परन्तु यदि हम श्रीभगवान के चरण-कमलों में भक्ति-लाभ कर सकें तो यही संसार 'मज़े की कुटिया' हो जायगा।

४. किसी ने श्रीरामकृष्ण देव से पूछा, "क्या संसार में रहकर ईश्वर की उपासना संभव है ?" श्रीरामकृष्ण देव थोड़ा मुसकराकर बोले, "गाँव में कभी चिउड़ा कूटनेवाली स्त्रियों को देखा है ? एक ही स्त्री एक हाथ से ओखली के भीतर चिउड़ा चलाती रहती है, दूसरे हाथ से लड़के को गोद में लेकर दूध पिलाती जाती है, साथ ही खरीददार से लेन-देन की बातचीत भी करती जाती है, कहती है, 'देखो जी, तुम्हारे ऊपर उस दिन का इतना पैसा बाकी है आज का इतना पसा हुआ' आदि-आदि। इस प्रकार वह सब कुछ करती रहती है, परन्तु उसका मन सदैव ढेंकली के मूसर की ओर ही रहता है—कहीं हाथ पर गिरा तो हाथ भरता हो जायगा ! बस, इसी प्रकार संसार में रहकर सब काम करो, परन्तु मन रखो श्रीभगवान के चरणों में। उनको भूल जाने से महा अनर्थ होगा।"

५. संसार में रहकर जो साधना कर सकते हैं, वे यथार्थ में वीर साधक हैं। शक्तिवान पुरुष जैसे सिर पर भारी बोझा लादे रहने पर भी दूसरी ओर गर्दन मोड़कर देख सकता है, वैसे ही वीर साधक इस संसार के बोझ को लादे रहने पर भी भगवान की ओर देख सकता है।

६. उत्तर हिन्दुस्थान की स्त्रियाँ सिर पर चार-पाँच घड़े रखकर ले जा सकती हैं। रास्ते में अपनी जान-पहचानवाले लोगों से तनिक देर खड़ी होकर बातें भी कर लेती हैं, पर उनका ध्यान हर समय उन्हीं घड़ों की ओर रहता है, कि कही वे गिर न पड़ें। धार्मिक पुरुषों को भी इसी प्रकार धर्म-पथ पर दृष्टि रखनी चाहिये ताकि वे सन्मार्ग से भटक न जायँ।

७. बाउल सम्प्रदाय* के साधु जैसे दो हाथों से दो प्रकार के बाजे बजाते हैं और साथ ही मुँह से भजन भी गाते हैं, उसी प्रकार, हे संसारी जीव, तुम भी हाथ से अपना सब काम करते रहो, परन्तु मुँह से ईश्वर का नाम जपना मत भूलो।

८. कुलटा स्त्री अपने कुटुम्ब में रहते हुए गृहस्थी के सभी काम करती रहती है, पर उसका मन सदा उप-पति की ओर ही लगा रहता है। वह काम-काज करते समय भी सोचती रहती है कि कब उप-पति के साथ भेंट होगी। इसी प्रकार तुम भी संसार के सब काम-काजों को करते हुए अपने मन को प्रति क्षण भगवान की ओर ही रखो।

९. निर्लिप्त होकर संसार में रहना कैसा है, जानते हो?— जैसे 'पाँकाल' मछली। यह मछली रहती तो कीचड़ में है परन्तु कीचड़ उसके शरीर में नहीं लगता।

१०. तराजू का जिधर का पल्ला भारी होता है, उधर का झुक जाता है और जिधर का हल्का होता है, उधर का ऊपर उठ जाता है। मनुष्य का मन भी तराजू की भाँति है। उसके एक ओर संसार है और दूसरी ओर भगवान हैं। जिसके मन में संसार, मान इत्यादि का भार अधिक होता है, उसका मन भगवान की ओर से उठकर संसार की ओर झुक जाता है। और जिसके मन में वैराग्य,

---

* ये बंगाल के एक विशिष्ट वैष्णव संप्रदाय के साधु हैं। ये भजन गाते हुए घूमते रहते हैं।

विवेक तथा भगवद्भक्ति का भार अधिक होता है, उसका मन संसार की ओर से उठकर भगवान की ओर झुक जाता है।

११. एक किसान सारा दिन गन्ने के खेत में पानी सींचने के बाद जब खेत में गया तो उसने देखा कि खेत में एक बूँद भी पानी नहीं पहुँचा है। उस खेत में कई बड़े-बड़े बिल थे; उनमें से होकर सारा पानी दूसरी ओर बह गया था। इसी प्रकार, जो साधक विषय वासना और संसार के मान-अपमान की ओर ध्यान देते हुए साधन करते हैं, वे सारा जीवन ईश्वर की उपासना करने पर भी अन्त में यही देखते हैं कि उन वासनारूपी बिलों के द्वारा उनकी सम्पूर्ण चेष्टायें व्यर्थ हो गईं।

१२. लड़के एक हाथ से खूँटा पकड़कर दनादन घूमते हैं और तनिक भी नहीं डरते; परन्तु उनका मन सर्वदा खूँटे में ही लगा रहता है। वे जानते हैं कि खूँटा छोड़ देने से हम गिर पड़ेंगे। संसार में भी इसी प्रकार सब काम करते रहो, परन्तु चित्त को सर्वदा ईश्वर की ओर लगाए रहो—इस प्रकार तुम सदैव निडर रहोगे

१३. संसार में सुख के लोभ से बहुत से लोग धर्म-कर्म किया करते हैं। परन्तु तनिक दुःख पाते ही या मरने के समय सब भूल जाते हैं। जैसे, तोता सारा दिन तो 'राधाकृष्ण, राधाकृष्ण' रटता है, परन्तु ज्योंही बिल्ली आकर धर-दबाती है त्योंही वह 'राधा-कृष्ण' भूलकर 'टें-टें' करने लगता है।

१४. पानी में नाव रहे तो कोई हानि नहीं; परन्तु नाव में पानी पहुँचा तो नाव डूब जायगी। साधक को संसार में रहने से कोई हानि नहीं, परन्तु साधक के मन में संसार-भाव घुसने का फल बुरा होता है।

१५. संसार कैसा है ? जानते हो ?—जैसा आमड़े का फल। गूदे का नाम नहीं, केवल गुठली और छिलका; फिर, खाओ तो आम्ल-शूल की बीमारी हो।

१६. कटहल तोड़ने के लिए लोग पहले हाथ में तेल लगा लेते हैं, क्योंकि ऐसा करने से कटहल का दूध हाथ में नहीं चिपकता, इसी प्रकार, यदि ज्ञान-रूपी तेल हाथ में लगाकर इस संसार-रूपी कटहल का संभोग किया जाय तो कामिनी-काञ्चनरूपी दूध का दाग़ मन में नहीं लग सकेगा।

१७. साँप पकड़ने जाओ तो तुरन्त ही काट खायगा, परन्तु कोई मनुष्य यदि मन्त्र जानता हो तो कई साँपों को अपने गले में लपेटकर खूब तमाशा दिखला सकता है। वैसे ही, वैराग्य और विवेक का मन्त्र सीखकर यदि कोई संसार में रहे, तो संसार की माया में फँस नहीं सकता।

१८. जिसके अन्दर जो भाव रहता है, वह उसकी बातचीत से ही प्रकट हो जाता है। जैसे मूली खाने पर डकार में मूली की ही गंध आती है, वैसे ही संसारी लोग साधु-संग करने के लिए जब कभी आते हैं तो वहाँ भी बहुधा संसारी बातें ही किया करते हैं।

१९. मन को ही सब कुछ जानो। ज्ञान अथवा अज्ञान—सब कुछ मन की ही अवस्था है। मनुष्य का मन ही उसे बद्ध और मुक्त, साधु और असाधु, पापी तथा पुण्यवान बनाता है। संसारी जीव यदि मन में सर्वदा भगवान का स्मरण-मनन कर सकें, तो उन्हें फिर और किसी साधना की आवश्यकता नहीं।

२०. ज्ञान-लाभ होने पर मनुष्य किस प्रकार रहता है, जानते हो ?—जैसे शीशे के घर में बैठने से भीतर और बाहर दोनों ओर दिखाई देता है। ज्ञानी मनुष्य को अन्दर और बाहर सर्वत्र सर्वव्यापी चैतन्य का बोध होता रहता है।

२१. गीता पढ़ने से जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह गीता का बार-बार उच्चारण करने से ही स्पष्ट हो जाता है; जैसे, 'गी तागी तागी तागी....' (त्यागी त्यागी त्यागी), अर्थात् हे जीव, सर्वस्व का त्याग कर ईश्वर के चरणकमलों का आश्रय ले।

साधना का अधिकारी

१. आम, अमरूद इत्यादि के केवल साबुत फल ही ठाकुरजी के भोग में लग सकते हैं। कौए आदि के द्वारा काटा हुआ दाग़ी फल न तो देव-पूजा में आ सकता है और न ब्राह्मण अपने कार्य में ही ला सकता है। इसी प्रकार, पवित्रहृदय बालकों या युवा पुरुषों को धर्म-पथ पर लाने की चेष्टा करना उचित है। जिस पुरुष के हृदय में एक बार भी विषय-बुद्धि प्रवेश कर गई है, उसका धर्म-पथ पर चलना बड़ा ही कठिन हो जाता है।

२. मैं कुमार बालकों को इतना प्यार क्यों करता हूँ, जानते हो? बाल्यावस्था में उनका मन सोलहों आना अपने वस में रहता है। पर बड़े होने पर धीरे धीरे कई भागों में विभाजित हो जाता है। विवाह होने पर आठ आना स्त्री के पास चला जाता है। सन्तान होने पर चार आना बच्चों की ओर बँट जाता है, और चार आना माता-पिता, मान सन्मान और सज धज की ओर रहता है। इसीलिये जो लोग छोटी अवस्था में ईश्वर-लाभ की चेष्टा करते हैं, वे सहज ही में सफलीभूत हो जाते हैं। बूढ़ों के लिये सफलता पाना बडी कठिन समस्या हो जाती है।

३. तोते के गले में कण्ठी निकल आने पर उसे फिर और नहीं पढ़ाया जा सकता। जब तक वह बच्चा रहता है, केवल तभी तक जो चाहो वह पढ़ना सीख सकता है। इसी प्रकार, बूढ़े का मन

सहज ही ईश्वर की ओर नहीं जाता, पर बाल्यावस्था में थोड़ी सी चेष्टा से ही मन स्थिर हो सकता है।

४. एक सेर दूध में यदि केवल एक छटाँक पानी मिला हो, तो थोड़ी आँच में ही खोआ बनाया जा सकता है, परन्तु एक सेर में यदि तीन पाव पानी हो तो आसानी से खोआ नहीं बन सकता, बहुत लकड़ी और आँच की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार, बालक के मन में विषयवासना बिलकुल कम होने के कारण उसका मन ईश्वर की ओर सरलतापूर्वक ढल जाता है। परन्तु बूढ़ों के मन में विषयवासना खूब ठूँस-ठूँसकर भरे रहने के कारण उनका मन ईश्वर की ओर नहीं जाता।

५. जैसे कच्चा बाँस आसानी से झुकाया जा सकता है और पक्का बाँस झुकाये जाने पर टूट जाता है, वैसे ही बच्चों का मन आसानी से ईश्वर की ओर झुकाया जा सकता है। परन्तु बूढ़ों के मन को यदि उस ओर झुकाने का प्रयत्न किया जाय तो वे उस सत्संग को त्याग देते हैं।

६. मनुष्य का मन मानो सरसों की पोटली है। पोटली की सरसों यदि एक बार बिखर जाय तो इकट्ठा करना मुश्किल हो जाता है। उसी प्रकार मनुष्य का मन यदि एक बार संसार में इतस्ततः बिखर जाय तो उसे संभालना बड़ा ही कठिन होता है। बालक का मन बिखरा न होने के कारण बहुत शीघ्र स्थिर हो जाता है, परन्तु बूढ़ों का मन सोलहों आना संसार में बँटे रहने के कारण संसार से हटाकर ईश्वर में लगाना बड़ा ही कठिन कार्य हो जाता है।

७. सूरज निकलने से पहले यदि दही को मथा जाय तो बढ़िया मक्खन निकलता है, दिन चढ़ जाने पर वैसा मक्खन नहीं निकलता। इसी प्रकार बाल्यावस्था से ही जो ईश्वरानुरागी होते हैं और साधन-भजन में लगे रहते हैं, उन्हें ईश्वर अवश्य प्राप्त होता है।

८. वासनाशून्य मन कैसा है, जानते हो?—जैसे सूखी दियासलाई। एक बार घिसने से ही तुरन्त जल जाती है। पर यदि वह गीली हो तो घिसते-घिसते टूट जाती है, किन्तु जलती नहीं। इसी प्रकार, सरल, सत्यनिष्ठ और निर्मल स्वभाववालों को एक बार उपदेश देने से ही उनका मन ईश्वर के पादपद्मों में लीन हो जाता है। विषयासक्त पुरुषों पर उपदेशों का कोई फल नहीं होता।

उत्तम भक्त

१. पत्थर हजारों वर्ष तक यदि पानी में पड़ा रहे तो भी पानी उसके अन्दर नहीं घुस सकता, पर मिट्टी का ढेला पानी लगते ही गल जाता है। जो विश्वासी भक्त हैं, वे हजारों विपत्तियों में पड़ने पर भी हताश नहीं होते, पर अविश्वासी मनुष्य का हृदय सामान्य दुःख से ही विचलित हो जाता है।

२. प्रह्लाद की स्तुति से संतुष्ट होकर भगवान ने पूछा, "तुम क्या वर चाहते हो?" प्रह्लाद ने कहा, "हे भगवन्! जिन्होंने मुझे कड़े-कड़े कष्ट दिये हैं, उन्हें आप क्षमा कीजिये। उनको दण्ड देने पर आप ही को कष्ट सहना पड़ेगा; क्योंकि आप ही तो सर्व भूतों में विद्यमान हैं।"

३ एक समय भक्त केशवचन्द्र के बारे में सुनकर श्रीरामकृष्ण देव की उनसे भेंट करने की बड़ी इच्छा हुई। केशवबाबू उस समय बेलघर के स्वर्गीय जयगोपाल सेन के बगीचे में ब्राह्मभक्तों के साथ वास कर रहे थे। अपने भाँजे हृदय को साथ ले श्रीरामकृष्ण गाड़ी करके बेलघर के बगीचे में आये। केशवबाबू उस समय ब्राह्मभक्तों के साथ स्नान के लिये जाने की तैयारी में थे। उनसे भेंट होते ही श्रीरामकृष्ण देव बोल उठे, "इनकी दुम झड़ गई है!" यह सुनकर ब्राह्मसमाजी भक्त हँस पड़े। केशवचन्द्र ने उन लोगों से कहा, "हँसो नहीं। ये महात्मा जो कुछ कहते हैं, उसका अवश्य ही कोई गूढ़

उत्तम भक्त

तत्व है।" तब श्रीरामकृष्ण देव ने कहा, "मेंढक के बच्चे की जब तक दुम रहती है, तब तक वह पानी में ही रहता है। दुम झड़ जाने पर पानी और स्थल दोनों ही स्थानों में रह सकता है। उसी प्रकार, जब भगवान के चिन्तन से सब अविद्या दूर हो जाती है, तब भक्त भगवान में डूबा रह सकता है और साथ ही संसार में भी विचरण कर सकता है।"

भिन्न-भिन्न प्रकार के साधक

१. संसार में दो प्रकार के साधक दिखलाई देते हैं—एक बन्दर के बच्चे के समान और दूसरे बिल्ली के बच्चे के समान। बन्दर का बच्चा पहले अपनी माँ को पकड़ता है, फिर माँ उसको साथ लेकर यहाँ-वहाँ घूमती है। बिल्ली का बच्चा केवल एक स्थान में रहकर म्याऊँ-म्याऊँ करता रहता है। फिर उसकी माँ उसकी गर्दन पकड़कर इधर-उधर ले जाती है। इसी प्रकार ज्ञानमार्ग या कर्म-मार्ग से जानेवाले साधक अपनी चेष्टा-द्वारा ईश्वर की प्राप्ति का प्रयत्न किया करते हैं। और भक्ति-मार्ग से जानेवाले साधक ईश्वर को ही अपना कर्ता-धर्ता समझकर, उन्हीं के चरणों में भरोसा किये हुए, बिल्ली के बच्चे की भाँति, निश्चिन्त होकर उनका नाम जपा करते हैं।

२. जिस प्रकार एक ही व्यक्ति किसी का बाप, किसी का ताऊ, किसी का चाचा, किसी का मौसा, किसी का लड़का, किसी का दामाद और किसी का श्वशुर इत्यादि होता है और इस तरह उसके सम्बन्ध भिन्न-भिन्न प्रकार के हो जाते हैं, उसी प्रकार भक्त लोग उस एक ही सच्चिदानन्द की शान्त, दास्य, वात्सल्य, मधुर आदि नाना भावों-द्वारा उपासना करते हैं।

३. जिसकी जैसी भावना होती है, उसको वैसा ही फल मिलता है। जो भगवान को चाहते हैं, उन्हें भगवान ही प्राप्त होते हैं और जो उनके ऐश्वर्य की कामना करते हैं, वे केवल ऐश्वर्य को ही पाते हैं।

४. राजा के महल में जो भीख माँगने की अभिलाषा से जाकर आटा, चावल इत्यादि साधारण वस्तुओं की प्रार्थना करता है, वह निरा मूर्ख है। राजाधिराज भगवान के दरवाजे पहुँचकर ज्ञान, भक्ति आदि रत्नों की प्रार्थना न करके जो अष्टसिद्धियाँ आदि किसी सांसारिक तुच्छ वस्तु की याचना करता है, उसकी बुद्धि को क्या कहा जाय ?

५. भक्त या ज्ञानी के भाव बाहर से समझना बड़ा कठिन है। हाथी के दो प्रकार के दाँत होते हैं। बाहरी दाँत केवल दिखाऊ होते हैं, उनसे खाया नहीं जा सकता। एक और प्रकार के दाँत मुँह के अन्दर होते हैं, जिनके द्वारा हाथी खाता है। इसी प्रकार सच्चे साधक अपना यथार्थ भाव बाहर प्रकट नहीं होने देते।

६. योगी दो प्रकार के होते हैं—गुप्त योगी और व्यक्त योगी। जो गुप्त योगी हैं, वे गुप्त रूप से ईश्वर-भजन में संलग्न रहते हैं। बाहरी लोगों को तनिक भी पता नहीं लगने पाता। और जो व्यक्त योगी हैं, वे योग-दण्डादि बाह्य चिह्न धारण करके लोगों के साथ योग की ही बातचीत किया करते हैं।

साधना-पथ में विघ्न

१. जिस प्रकार घड़े में एक भी छेद के रहने से सब पानी धीरे-धीरे बह जाता है, उसी प्रकार साधक के अन्दर यदि थोड़ी भी कमज़ोरी रह जाय तो सब साधना व्यर्थ हो जाती है।

२. गीली मिट्टी से कोई भी चीज़ बनाई जा सकती है। परन्तु पकी हुई मिट्टी गढ़ने के काम में नहीं आ सकती। जिसका हृदय विषय-बुद्धि की ज्वाला से पक गया है, उसमें पारमार्थिक भाव नहीं हो सकता।

३. जैसे चींटी शक्कर और बालू के एक साथ रहने पर भी, बालू को छोड़कर शक्कर खा लेती है, वैसे ही सन्त लोग इस संसार में सद्वस्तु सच्चिदानन्द भगवान का ग्रहण कर लेते हैं और असद्वस्तु कामिनी–काञ्चन आदि को त्याग देते हैं।

४. कागज़ में यदि तेल लगा हो तो उस पर लिखा नहीं जा सकता, उसी प्रकार जीव में जब कामिनी–काञ्चनरूपी तेल लग जाता है तो उसके द्वारा साधना नहीं हो सकती। फिर जिस प्रकार उस तेल लगे हुए कागज़ को खड़िये से घिसने पर उस पर लिखा जा सकता है, उसी प्रकार कामिनी–काञ्चन से मथे हुए मन को यदि त्यागरूपी खड़िये से घिसकर शुद्ध किया जाय, तो साधना की जा सकती है।

५. जो लोग स्वयं तो धर्म की चर्चा करते ही नहीं, वरन् दूसरों को ध्यान पूजा करते देख उनकी हँसी-दिल्लगी उड़ाते हैं और धर्म एवं धार्मिक पुरुषों की निन्दा करते हैं, ऐसे पुरुषों का संग साधक के लिये सर्वथा अनुचित है। ऐसे लोगों से दो हाथ दूर ही रहना चाहिये।

६. गौओं के झुण्ड में यदि कोई दूसरा जानवर घुस जाता है तो सब गौएँ मिलकर उस जानवर को सींग से मार-मारकर भगा देती हैं। पर यदि कोई गाय आ जाय तो आपस में शरीर चाटने लगती हैं। इसी प्रकार जब भक्तजनों में भेंट होती है तो वे आपस में धर्म की बातें किया करते हैं और परम सुख का अनुभव करते हैं; उनका संग छूट जाने पर उन्हें बड़ा दुःख होता है। परन्तु कुजातीय पुरुष आ जाने पर उन्हें उसका संग करने में आनन्द नहीं मिलता।

७. जो तालाब छिछला है, उसका पानी पीना हो तो ऊपर से धीरे-धीरे ले लेना चाहिये। अधिक खलबलाने से नीचे का कीचड़ ऊपर उठकर सारे पानी को मैला कर देता है। यदि सच्चिदानन्द-लाभ करना चाहते हो तो गुरु के उपदेश में विश्वास करके धीरे-धीरे साधना करो। व्यर्थ में केवल शास्त्र-विचार अथवा तर्क-वितर्क करने से यह छिछला मन मैला हो जायगा।

८. भला बताओ तो, भूत उतरे तो उतरे कैसे ? जिन सरसों के दानों से भूत उतारना है, उन्हीं के भीतर तो भूत घुसा हुआ है; जिस मन से साधन-भजन करना है, वही यदि विषय में लिप्त हो तो साधन-भजन कैसे होगा ?

९. मन और मुख (अर्थात् भीतर और बाहर) दोनों को एक करना ही यथार्थ साधना है। मुँह से तो कहते हैं, "हे भगवन्! तुम्हीं हमारे सर्वस्व हो!" परन्तु मन में विषय को ही सब कुछ मानकर बैठे हैं! ऐसे लोगों की साधनायें कैसे सफल होंगी?

१०. वासना का चिह्न मात्र भी रह जाने पर भगवान प्राप्त नहीं होते। धागे में यदि ज़रा भी गाँठ पड़ी हो तो सूई के छिद्र में नहीं डाला जा सकता। मन जब वासनारहित होकर शुद्ध हो जाता है तभी सच्चिदानन्द का लाभ होता है।

११. जो लोग ईश्वर-प्राप्ति के लिए साधन-भजन करने की इच्छा रखते हों, उन्हें चाहिए कि कामिनी-कांचन के मोह में किसी प्रकार न फँसें; क्योंकि यदि इनका संसर्ग रहा तो सिद्धावस्था लाभ करने की कभी संभावना नहीं। लाई भूनते समय जो लाई मटके से चटखकर बाहर गिर जाती है, उसमें किसी प्रकार का दाग़ नहीं लगता; परन्तु जो उस मटके के गरम रेत में रहती है, उसमें किसी-न-किसी स्थान पर काला दाग़ अवश्य लग जाता है।

१२. विषय-वासना, सन्तति तथा मान-इज्ज़त के लिए कामना रखकर ईश्वराराधना नहीं करनी चाहिए। जो केवल सच्चिदानन्द का लाभ करने के लिए उनसे प्रार्थना करता है, उसे निश्चय ही ईश्वर की प्राप्ति होती है।

१३. जैसे हवा से हिलते हुए जल में परछाई नहीं दिखलाई देती, उसी प्रकार मन के स्थिर हुए बिना भगवान का प्रकाश नहीं

होता। साँस के लेने और निकलने के साथ-साथ मन चंचल होता है। इसीलिए योगी पुरुष कुम्भक-द्वारा मन को स्थिर करके भगवान की ध्यान-धारणा करते हैं।

१४. जिसके भाव में कपटता नहीं रहती, उसी को सच्चिदानन्द-स्वरूप परमेश्वर का लाभ होता है। तात्पर्य यह है कि केवल सरलता और विश्वास के बल पर ही उनको (ईश्वर को) पाया जाता है।

१५. जैसे साँप देखने से लोग कहते हैं, 'माँ, तुम मुँह मत दिखलाया करो, केवल पूँछ दिखलाओ' वैसे ही युवती स्त्री को देखने से उसको माँ कहकर नमस्कार करना चाहिए और उसके मुँह की ओर न देखकर पैर की ओर ही दृष्टि रखनी चाहिए। ऐसा करने से प्रलोभन या गिरने का डर नहीं रहेगा।

१६. स्त्री चाहे विद्याशक्ति (भगवान के प्रति प्रेम-भक्ति आदि वाली) हो या अविद्याशक्ति (विपरीत गुणोंवाली), साधु-संन्यासी और भक्तमात्र को चाहिए कि वे सभी स्त्रियों को श्री माता आनन्द-मयी की मूर्तियाँ समझें।

१७. नितान्त एकान्त स्थान में युवती स्त्री को देखकर जो पुरुष माता कहकर जा सकता है, उसी को ठीक-ठीक त्यागी कहना चाहिए और जो सभा में त्यागी बनकर रहे, वह वास्तव में त्यागी नहीं है।

१८. अभिमान की जड़ मरकर भी नहीं मरती। जैसे, बकरा काटे जाने पर, मुण्ड धड़ से अलग हो जाने पर भी वह कुछ देर तड़फता रहता है।

१९. अभिमानशून्य होना बड़ा ही कठिन है। प्याज़ या लहसुन को कूटकर यदि किसी बर्तन में रखा जाय और फिर उस वर्तन को सैकड़ों बार धोया जाय तो भी उसकी गन्ध नहीं जाती। इसी प्रकार, अभिमान का कुछ-न-कुछ चिन्ह रह ही जाता है।

२०. सच्चे संन्यासी का लक्षण जानते हो? वे कामिनी-काञ्चन के संसर्ग में किसी हालत में नहीं आते। यहाँ तक कि यदि स्वप्न में भी स्त्री-संसर्ग होने का ज्ञान हो और उससे वीर्यपात हो जाय अथवा पैसे में मोह आ जाय तो इतने दिन का साधन-भजन सब नष्ट हो जाता है।

२१. भगवान कल्पवृक्ष हैं। कल्पवृक्ष से जो कुछ प्रार्थना की जाय, वही प्राप्त होता है। अतः साधन-भजन के द्वारा जब मन शुद्ध हो जाय तब खूब सावधानी से कामनाओं का त्याग करना चाहिए। कैसे, जानते हो?

एक मनुष्य किसी समय घूमते-घूमते किसी दूर देश में जा पहुँचा। धूप की तेजी से पसीने से लथपथ होने और अत्यन्त थक जाने के कारण वह एक पेड़ के नीचे बैठकर अपनी थकावट दूर करने लगा। ऐसी स्थिति में वह सोचने लगा कि यदि उसे सुन्दर शय्या मिल जाय तो खूब आराम से सोये। पथिक यह नहीं जानता था कि वह कल्पवृक्ष के नीचे बैठा है। उसके मन में ज्योंही यह विचार आया कि तुरन्त सुन्दर शय्या सामने आ गई। पथिक को बड़ा अचम्भा हुआ और अपने मन में सोचने लगा कि इस समय यदि

एक स्त्री मेरे पैर दबाये तो बड़े ही सुख की निद्रा पाऊँ। यह संकल्प होते ही तुरन्त एक युवती पथिक के पैरों के पास आ बैठी और पैर दबाने लगी। तब पथिक आनन्द से फूला न समाया। उसके बाद उसे खूब भूख लगी; तब वह कहने लगा कि कोई भोजन की वस्तु मिल जाय तो बड़ा अच्छा हो। ऐसा कहते ही वहाँ नाना प्रकार के भोजन उपस्थित हो गये। पथिक भोजन करने के पश्चात् उस दिन की सब घटनाओं पर विचार करने लगा। इसी समय उसे अचानक विचार आया कि कहीं जंगल से एक शेर निकल पड़े तो क्या करूँगा। ऐसा विचार पैदा होते ही एक बड़ा भयानक शेर एक छलांग में उस पर आ पड़ा और उसकी गर्दन पकड़कर खून चूसने लगा। अन्त में उसके जीवन का भी अन्त हो गया। इस संसार में जीव की भी ऐसी ही दशा हुआ करती है। ईश्वर-उपासना करने पर, विषय, धन, जन अथवा मान-यश की कामना करने पर ये वस्तुयें कुछ-कुछ प्राप्त तो हो जाती हैं, परन्तु शेर का डर भी बना रहता है। आपत्ति, रोग, शोक, ताप,मान और अपमान इत्यादि रूपी शेर असली शेर से कहीं अधिक कष्ट देते हैं।

२२. एक मनुष्य के मन में अचानक वैराग्य-भाव के उदय होने पर उसने अपने घरवालों से कहा, "अब संसार मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं किसी निर्जन स्थान में रहकर अब उपासना करूँगा।" उसके घरवालों ने उसके इस शुभ संकल्प का समर्थन किया। वह मनुष्य घर से शीघ्र निकल गया और एक निर्जन स्थान में पहुँचकर घोर तपस्या करने लगा। इस प्रकार बारह साल साधना

करने के पश्चात् उसे कुछ सिद्धियाँ प्राप्त हुईं और वह घर लौट आया। इतने दिनों बाद फिर से भेंट होने के कारण उसके सम्बन्धियों को बड़ा आनन्द हुआ और वे बड़ी प्रसन्नता के साथ उससे बातचीत करते हुए पूछने लगे, "इतने दिन तपस्या करने से तुमको क्या प्राप्त हुआ?" तब वह मनुष्य थोड़ा मुस्कराया और तुरन्त एक हाथी के पास, जो उसके सामने आ रहा था, जाकर उसे तीन बार छूकर कहने लगा, "हाथी, तू मर जा"। उसके यह कहते ही हाथी तुरन्त गिर पड़ा और मुर्दा-सा हो गया। कुछ देर पश्चात् फिर उसके शरीर पर हाथ रख उस मनुष्य ने कहा, "हाथी, तू जीवित हो जा"—और तुरन्त हाथी जीवित हो गया।

इसके बाद वह घर के पास की नदी के किनारे आकर मन्त्रबल से नदी के पार जा पहुँचा। उसके भाई-बन्धु यह सब देखकर आश्चर्य से तो भर गये, पर उन्होंने उस तपस्वी भाई से कहा, "भाई, आपकी इतने दिन की तपस्या व्यर्थ हुई; हाथी के मरने और जीवित होने से आपको क्या लाभ हुआ? आपने बारह साल कठोर तपस्या करके नदी को पार करना सीखा है, हम तो एक पैसा खर्च करके ही पार हो जाते हैं। इसलिये आपने व्यर्थ ही समय नष्ट किया।" भाइयों की ऐसी बातें सुनकर उसे यथार्थ ज्ञान हुआ।

२३. अपने को औरों से अधिक चतुर मानना उचित नहीं। जैसे, कौआ बहुत चतुर होता तो है किन्तु विष्ठा खाता फिरता है। इसी तरह, इस संसार-चक्र में जिनके दिन अधिक चालाकी करते बीतते हैं, वे ही ठगे जाते हैं।

२४. एक दिन गंगा के किनारे खड़े होकर मैंने एक हाथ में एक रुपया और दूसरे हाथ में मिट्टी लेकर—" मिट्टी ही रुपया और रुपया ही मिट्टी " ऐसा विचार कर जब दोनों को गंगा के जल में छोड़ दिया, तब मन में थोड़ा डर और चिन्ता हुई। मैंने सोचा कि लक्ष्मी इससे कहीं कुपित होकर मुझे खाने को न दें तो ! फिर मन में सोचा और बोला," हे लक्ष्मी माई ! तुम मेरे हृदय में रहो, मैं तुम्हारे ऐश्वर्य को नहीं माँगता।"

२५. ईश्वर दो बार हँसते हैं। एक बार, जब भाई-भाई रस्सी लेकर जमीन के हिस्से करते हैं और कहते हैं, " इधर मेरा और उधर तेरा"; और दूसरी बार उस समय, जब किसी की कठिन बीमारी में उसके बन्धु तथा कुटुम्बी लोगों को रोते देख वैद्य कहता है, "तुम लोग डरो मत, मैं इसे अच्छा कर दूँगा।" वैद्य यह नहीं जानता कि यदि ईश्वर किसी को मारे तो किसकी शक्ति है जो उसकी रक्षा करे ?

२६. भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते थे—" हे अर्जुन ! अष्टसिद्धियों* में से यदि एक भी सिद्धि तुम्हारे पास रहे तो मेरा जो परम भाव है, उसे तुम नहीं पा सकोगे।" अतएव, जो ठीक-ठीक भक्त और ज्ञानी हैं, उन्हें किसी प्रकार सिद्धि की कामना नहीं करनी चाहिए।

---

* "अणिमा, लघिमा चैव महिमा, गरिमा तथा।
प्राप्ति प्राकाम्यमीशत्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः ॥"

सूक्ष्मता, क्षुद्रता, बृहत्पन, इच्छा की प्राप्ति, सब पर शासन की योग्यता, सब को वश में लाना, और जहाँ खुशी हो चले जाना, ये आठ सिद्धियाँ हैं।

[illegible] श्रीरामकृष्ण देव [illegible] हुई। श्रीरामकृष्ण [illegible] [illegible] बोले, "मैं [illegible] के लिए [illegible] चाहता हूँ।" यह बात सुनते ही श्रीरामकृष्ण देव [illegible] मूर्छित हो गये। थोड़ी देर के बाद [illegible] बोले, "भाई, तुम यहाँ से अभी उठ जाओ, तुम मुझे माया का प्रलोभन दिखाते हो!" उस मारवाड़ी भक्त ने खिन्न होकर कहा, "आप अभी थोड़े कच्चे हैं।" श्रीरामकृष्ण देव ने पूछा, "कैसे?" मारवाड़ी भक्त बोला, "महापुरुष लोगों की खूब उच्च अवस्था होने से त्याग-ग्रहण दोनों बराबर हो जाते हैं। कोई कुछ दे या ले, उससे उनके चित्त में सन्तोष या क्षोभ नहीं होता।" श्रीरामकृष्ण देव यह बात सुनकर कुछ हँसे और समझाने लगे, "देखो, दर्पण में दाग होने पर जैसे ठीक-ठीक मुख नहीं दिखाई पड़ता, उसी तरह जिसका मन निर्मल हो गया है, उसमें कामिनी-कांचन का दाग पड़ना ठीक नहीं है।" वह मारवाड़ी भक्त बोला, "अच्छी बात है। हृदय आपकी सेवा करता है, उसी के नाम से यह रुपया सेवा के लिये रख देता हूँ।" उन्होंने कहा, "नहीं, वह भी नहीं होगा, क्योंकि उसके पास रुपया रहने पर यदि किसी समय मैं कहूँ कि अमुक को कुछ दे दो, या अन्य किसी तरह मेरी खर्च करने की इच्छा हो, और उस समय यदि वह न देना

चाहे, तो सहज ही में यह अभिमान आ सकता है कि यह रुपया तो तुम्हारा नहीं है। यह तो मुझे दिया गया है। अतएव यह अभिमान भी अच्छा नहीं है।" मारवाड़ी भक्त को श्रीरामकृष्ण देव की यह बात सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ और उनके इस अदृष्टपूर्व त्यागभाव को देखकर अतिशय आनन्दित हो कर वह घर लौट गया।

२८. धन का घमण्ड नहीं करना चाहिए। यदि कहो कि 'मैं धनी हूँ,' तो धनी से भी बढ़कर धनी है और उससे भी धनी-धोरी हैं। सायंकाल में जब जुगनू उड़ते हैं तब वे सोचते हैं कि हम ही इस संसार को प्रकाश दे रहे हैं, पर नक्षत्रों के उदय होते ही उन जुगनुओं का घमण्ड शान्त हो जाता है। तब नक्षत्रों को घमण्ड होता है कि वे ही जगत् को प्रकाश दे रहे हैं; परन्तु जब चन्द्रमा का उदय होता है तब नक्षत्र भी लज्जित हो मलिन हो जाते हैं। फिर चन्द्रमा सोचता है कि मैं ही संसार को प्रकाश देनेवाला हूँ, मेरा प्रकाश पाकर मानो संसार हँस रहा है। फिर जब देखते-देखते अरुणोदय होता है तब चन्द्रमा भी मलिन हो जाता है। धनवान यदि इस बात पर विचार करे तो फिर धन का घमण्ड उसे नहीं रह जाता।

२९. "एक कौपीन के वास्ते।"—एक साधु अपने गुरु से उपदेश लेकर साधन-भजन करने की इच्छा से किसी गाँव के पास एकान्त मैदान में एक झोपड़ी बनाकर उसमें रहने लगे और साधन-भजन करते रहे। वे हर रोज सबेरे उठते और नहाकर गीला कपड़ा और कौपीन झोपड़ी के पास एक पेड़ पर सुखाने को डाल

देते थे। वे जिस समय भिक्षा के लिए बाहर जाते थे, उस समय एक चूहा आकर उनका कौपीन काट देता था। साधु दूसरे दिन गाँव से फिर नया कौपीन माँग लाते थे। कुछ दिन बाद फिर एक दिन साधु ने नहाकर गीला कौपीन सुखाने के लिए झोपड़ी के ऊपर डाल दिया और भिक्षा के लिए गाँव में चले गये। भिक्षा के बाद लौटकर उन्होंने देखा कि चूहे ने कौपीन के टुकड़े-टुकड़े कर डाले हैं। यह देख मन में बहुत तंग आकर वे सोचने लगे--"फिर कहाँ किससे कौपीन मागूँ?" दूसरे दिन जाकर गाँववालों से उन्होंने जब चूहे की कथा कही, तो गाँववालों ने कहा—"आपको रोज़-रोज़ कौपीन कौन देगा? आप एक काम कीजिये—झोपड़ी में एक बिल्ली पालिए, उसके डर से फिर चूहा नहीं आएगा।" साधु तत्काल ही गाँव से एक बिल्ली का बच्चा ले गये। उसी दिन से बिल्ली के डर से चूहे की शरारत बन्द हो गई। इससे साधु को बड़ा आनन्द हुआ। अब उस बिल्ली को बड़े प्यार और यत्न से पालने लगे और गाँव से दूध माँगकर बिल्ली को पिलाते रहे। कुछ दिन बाद किसी ने उनसे कहा—"साधु जी! आपको रोज़ दूध चाहिए, दो-चार दिन के लिए तो भिक्षा माँगकर काम चल सकता है, पर बारह महीने आपको कौन दूध देगा? आप एक काम कीजिये—एक गौ पालिए। उससे आप स्वयं भी उसका दूध पीकर तृप्त होंगे और बिल्ली को भी पिला सकेंगे।" थोड़े दिनों में साधु ने एक दूध देनेवाली गौ ले ली। अब साधु को दूध के लिए गाँव में नहीं जाना पड़ता था। बाद में साधु ने उस गौ के लिए गाँव से घास-पात माँगना शुरू किया। तब गाँववाले उनसे बोलने लगे—

"अपनी झोपड़ी के आस-पास पड़ी हुई जमीन में हल चलवाइए, तो फिर घास-पात के लिए आपको गाँव में भिक्षा माँगनी नहीं पड़ेगी।" निदान साधु ने अपने आस-पासवाली जमीन में किसानी शुरू की। इस काम के लिए धीरे-धीरे उनको आदमी रखना पड़ा। फसल-पैदावारी आदि जब इकट्ठी होने लगी तो उसके रखने-रखाने के लिए कोठार आदि भी बनाया गया। और इस तरह धीरे-धीरे वे साधु बिलकुल गृहस्थों की भाँति बड़े व्यस्त होकर अपने दिन व्यतीत करने लगे।

कुछ दिन बाद उन साधु के गुरुजी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने वे विषय-सम्पत्तियाँ देखकर एक नौकर से पूछा— "यहाँ एक त्यागी साधु झोपड़ी में रहते थे, वे अब कहाँ गये, बता सकते हो!" वह नौकर कुछ उत्तर न दे सका। अन्त में गुरुजी ने स्वयं ही उन साधु के गृह में प्रवेश कर, सामने ही अपने शिष्य को देखकर पूछा— "वत्स! यह सब क्या है!" शिष्य लज्जित होकर गुरुजी के श्रीचरणों में गिर पड़े और बोले— "महाराज, यह सब एक कौपीन के वास्ते हुआ।" शिष्य ने एक-एक करके सारी घटनाएँ गुरुजी को कह सुनाईं। श्रीगुरु के दर्शन से शिष्य की सारी आसक्ति नष्ट हो गई और उसने तत्क्षण सब विषय-सम्पत्तियाँ त्यागकर गुरुजी का अनुगमन किया।

१०. हृदय मुखर्जी एक दिन श्रीरामकृष्ण देव से बोले—"मामा, तुम पर काली माई की इतनी कृपा है तो तुम उनसे कुछ सिद्धाई

क्यों नहीं माँग लेते ! " श्रीरामकृष्ण देव की उन दिनों बालक जैसी अवस्था थी। हृदय की यह बात सुनकर एक दिन चम्पा-तला-तालाब के घाट पर बैठकर बालक की भाँति काली माता से कहने लगे—"माँ, हृदय कहता है कि तुम माता से कुछ सिद्धाई क्यों नहीं माँग लेते ?" यह कहकर वे माता का ध्यान करने लगे। थोड़ी देर में उन्होंने अपने सामने देखा कि काले रंग की किनारीदार साड़ी पहने हुए एक मोटी औरत शौच में बैठी है। इसके बाद वहाँ से लौटकर उन्होंने हृदय से कहा—"साले, तूने मुझे क्या सलाह दी थी ? मैं आज से तेरी कोई भी सलाह न मानूँगा। तेरी बात सुनकर मैंने जब माता से कहा, "माता ! हृदय मुझसे कहता है कि 'तुम माता से सिद्धाई क्यों नहीं माँग लेते,' तत्क्षण माता ने मुझे ऐसा गंदा रूप दिखलाया।"

साधना के सहायक

प्रथम अवस्था में थोड़ा एकान्त में बैठकर मन को स्थिर करना चाहिए; नहीं तो इधर-उधर बहुत कुछ देख-सुनकर मन चंचल हो जाता है। दूध को यदि पानी में मिलाओ तो वह पानी में बिलकुल मिल जाता है, परन्तु दूध को एकान्त में जमाकर, दही बनाकर, उसे मथकर यदि मक्खन निकाल लिया जाय तो फिर वह पानी के साथ नहीं मिलता, पानी के ऊपर ही तैरता रहता है। इसी प्रकार, जिनका मन स्थिर हो चुका है, वे कहीं भी बैठकर सदा ईश्वर का चिन्तन कर सकते हैं।

२. निष्ठा और भक्ति के बिना सच्चिदानन्द की प्राप्ति नहीं होती। एक पति में ही निष्ठा रहने से स्त्री सती होती है, इसी प्रकार अपने इष्ट के ऊपर निष्ठा होने पर इष्ट का दर्शन होता है।

३. हनुमानजी से किसी ने पूछा था—"आज कौन तिथि है?" महावीरजी ने उत्तर दिया—"मुझे वार, तिथि, नक्षत्र आदि किसी का पता नहीं। मैं तो केवल एक श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमलों को ही जानता हूँ।"

४. ध्यान करो—मन में, वन में और घर के कोने में।

५. एकान्त में गये बिना कठिन बीमारी कैसे अच्छी होगी? बीमारी तो है सन्निपात की, और जिस कमरे में वह रोगी है, उसी कमरे में इमली का अचार और जल का कुण्डा है! पुरुष के लिए स्त्री

इमली का अचार है और भोग-वासना है जल का कुण्डा। इससे बीमारी कैसे अच्छी होगी? (बीमारी की अवस्था तक जैसे रोगी को बदपरहेज़ से दूर रहना पड़ता है, वैसे ही) कुछ दिन निवास-स्थान से कहीं दूर एकान्त में जाकर साधन-भजन करना चाहिए। तदनन्तर नीरोग होकर लौटकर फिर घर में रहने से भी कोई डर नहीं।

६. प्रथम अवस्था में थोड़ा एकान्त में बैठकर ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। फिर जब ठीक-ठीक अभ्यास हो जाय तब कहीं भी ध्यान लग सकता है। जैसे, पेड़ जब छोटा रहता है, तब उसे बड़े यत्न से घेरकर, बेड़ लगाकर बचाना पड़ता है, नहीं तो गाय-बकरियाँ उसे खाकर नष्ट कर देती हैं, परन्तु बाद में जब तना मोटा हो जाता है, तब उसमें दस गाएँ और बकरियाँ भी यदि बाँध दी जायँ, तो भी उस पेड़ को कुछ हानि नहीं पहुँचती।

७. एक दिन किसी लड़के ने श्रीरामकृष्ण देव से पूछा—"महाराज! काम का दमन कैसे किया जाय?" श्रीरामकृष्ण देव ने मुसकराकर कहा—"सब स्त्रियों में अपनी माता का भाव रखना और कभी स्त्रियों के मुँह की ओर न देखना। सर्वदा केवल पैरों की ओर ही दृष्टि रखना, इससे सारे कुविचार दूर भाग जायेंगे।"

८. सहनशीलता से बढ़कर और कोई गुण नहीं है। जो सहता है, वही रहता है। जो नहीं सहता, उसका नाश हो जाता है। सारी वर्ण-माला में 'स' कार तीन होते हैं—श, ष और स। *

* तात्पर्य यह है कि 'स' नाम सहन करने का है, अतएव तीन बार उसका उच्चारण करने से सहन करने के उपदेश की दृढ़ता समझी जाती है।

९. सहनशीलता से बड़ा और कोई गुण नहीं है। सबमें सहनशीलता रहनी चाहिए। लोहार के घर में निहाई के ऊपर कितने ज़ोर से बड़े-बड़े हथौड़ों से पीटते हैं, तो भी निहाई का कुछ नहीं होता। इसी प्रकार, बुद्धि कूटस्थवत् (स्थिर) होनी चाहिए। कोई चाहे जो कुछ भी कहे या करे, उसे सहन कर लेना चाहिए।

१०. अच्छे-अच्छे चारे के फेंकने से जैसे मछलियाँ, कितनी ही दूर क्यों न रहें, दौड़ आती हैं, उसी प्रकार भगवान हरि भी विश्वासी भक्तों के हृदय में शीघ्र ही आ प्रगट होते हैं।

११. बरसात में पतंग दिया आदि देखते ही दौड आते हैं फिर प्राण भले ही चले जायँ, पर लौटकर फिर अँधियारे में नहीं जाते। इसी प्रकार जो भगवान के भक्त हैं, वे जहाँ-कहीं साधु रहते हैं और भगवत्प्रसंग होता है, वहीं चले जाते हैं। वे फिर साधन-भजन छोड़कर ससार के असार पदार्थों में बद्ध नहीं होते।

१२. पार्वतीजी ने श्री महादेवजी से पूछा, "भगवत्प्राप्ति का छोर (उपाय, किनारा) कहाँ है?" महादेवजी बोले, "विश्वास ही इसका ओर-छोर है। गुरु-वाक्य में अचल और अटल विश्वास के बिना सच्चिदानन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती।"

१३. इस दुर्लभ मनुष्य-देह को धारण कर जो सच्चिदानन्द का लाभ नहीं कर रहे हैं, उनका जन्म लेना ही वृथा है।

१४. मन कैसा है, जानते हो?—जैसे स्प्रिंग की गद्दी, जब तक गद्दी के ऊपर बैठे रहते हैं, तब तक वह गद्दी नीचे दबी रहती

है, परन्तु उठते ही फिर ऊपर उठ जाती है। इसी प्रकार, सज्जन और साधु संग से मनुष्यों को जितना भी भगवद्भाव प्राप्त होता है, साधु-संग छोड़ते ही वह सब अदृश्य हो जाता है और मन पहले जैसा था, वैसा ही हो जाता है।

१५. साधक भगवान के नाम में यदि रुचि और विश्वास कर सके तो उसे फिर और किसी प्रकार के विचार या साधना की आवश्यकता नहीं रहती ! नाम के प्रभाव से सब सन्देह दूर हो जाते हैं, नाम से ही चित्त शुद्ध होता है और नाम से ही सच्चिदानन्द का लाभ होता है।

१६. सरल विश्वास और निष्कपटता रहने से भगवान का लाभ होता है। एक व्यक्ति की किसी साधु से भेंट हुई। उसने साधु से उपदेश देने के लिए विनयपूर्वक प्रार्थना की। साधु ने कहा—"भगवान से ही प्रेम करो।" तब उस व्यक्ति ने कहा—"भगवान को न तो मैंने कभी देखा है और न उनके विषय में कुछ जानता ही हूँ, फिर उनसे कैसे प्रेम करूँ ?" साधु ने पूछा—"अच्छा, तुम्हारा किससे प्रेम है ?" उसने कहा—"इस संसार में मेरा कोई नहीं है, केवल एक मेढ़ा है, उसी को मैं प्यार करता हूँ।" साधु बोले—"उस मेढ़े के भीतर ही नारायण विद्यमान हैं, यह जानकर उसी की जी लगाकर सेवा करना और उसी को हृदय से प्रेम करना।" इतना कहकर साधु चले गए। उस आदमी ने भी, उस मेढ़े में नारायण हैं, यह विश्वास कर तन-मन से उसकी सेवा करनी शुरू कर दी। बहुत दिनों बाद उस रास्ते से लौटते सम[illegible] साधु ने उस [illegible]मी को खोजकर उससे

पूछा—"क्यों जी, अब कैसे हो?" उस आदमी ने प्रणाम करके कहा—"गुरुदेव! आपकी कृपा से मैं अब अच्छा हूँ। आपने जो कहा था, उसके अनुसार भावना रखने से मेरा बहुत कल्याण हुआ है। मैं मेढ़े के भीतर कभी-कभी एक अपूर्व मूर्ति देखता हूँ—उनके चार हाथ हैं—उनका दर्शन कर मैं परमानन्द में डूबा हुआ हूँ।"

१७. साधु-संग कैसा है, जानते हो?—जैसा चावल का धोया हुआ जल। जिसको अत्यन्त नशा चढ़ा हो, उसे यदि चावल का धोया हुआ पानी पिला दिया जाय तो नशा उतर जाता है। इसी प्रकार, इस संसार-रूपी मद में जो मत्त हो रहे हैं, उनका नशा छुड़ाने के लिए एक मात्र उपाय साधु-संग ही है।

१८. श्रीरामकृष्ण देव साँप और सन्त की तुलना करते थे। जैसे साँप स्वयं बिल नहीं बनाता किन्तु चूहों के बिल में निवास करता है, वैसे ही साधु भी अपने लिए मकान नहीं बनाते। आवश्यकता होने पर दूसरों के मकान में रहा करते हैं।

१९. जैसे वकील को देखने से मुकदमे और कचहरी की बातें मन में आती हैं और डाक्टर या वैद्य को देखने से बीमारी या दवाई की बातें, वैसे ही साधु या भक्त को देखने से भगवान का भाव उमड़ने लगता है।

साधना में अध्यवसाय

१. रत्नाकर (समुद्र) में अनेक रत्न हैं, पर तुमको यदि एक ही डुबकी में रत्न न मिले, तो रत्नाकर को रत्न से रहित मत समझो। इसी प्रकार यदि थोड़ी साधना करने से ईश्वर का दर्शन न हो तो निराश नहीं होना चाहिए। धैर्य धरकर साधना करते रहो, कभी न-कभी ईश्वर की कृपा अवश्य होगी।

२. समुद्र में एक प्रकार की सीप होती है। वह हमेशा मुँह खोलकर जल पर तैरती रहती है, परन्तु स्वाति नक्षत्र का एक बूँद जल मुँह में पड़ते ही वह अपना मुँह बन्द कर तुरन्त नीचे चली जाती है; फिर ऊपर नहीं आती। इसी प्रकार, जिज्ञासु विश्वासी साधक भी गुरु-मन्त्र-रूपी एक बूँद जल पाकर साधना के अथाह जल में एकदम डूब जाते हैं, फिर वे नहीं भटकते।

३. जिस प्रकार किसी धनवान से मिलने के लिए पहले पहरेदार की खुशामद करनी पड़ती है, उसी प्रकार ईश्वर के समीप पहुँचने के लिए अनेक प्रकार के साधन-भजन और सत्संग आदि अनेक उपाय आवश्यक होते हैं।

४. एक लकड़हारा जंगल से लकड़ी काटकर किसी प्रकार, दुःख और कष्ट सहते हुए, अपने दिन व्यतीत करता था। एक दिन वह जंगल से पतली-पतली लकड़ी काटकर सिर पर ला रहा था कि अकस्मात् कोई मनुष्य उसी रास्ते से जाते-जाते उसे पुकारकर बोला—

धरकर बैठना पड़ता है। और जब वह पानी में मछलियों का उछलना और साँस लेना देखता है तो उसे विश्वास हो जाता है कि तालाब में मछलियाँ हैं; और तब वह मछली पकड़ भी सकता है। धर्म-मार्ग में भी ऐसा ही होता है; साधकों और महापुरुषों की बातों पर विश्वास करके, भक्तिरूपी चारा डालकर, धैर्यरूपी बंसी लगाकर बैठे रहना चाहिये।

६. किसी ने श्रीरामकृष्ण देव के पास आकर कहा—"महाराज! बहुत दिनों से साधन-भजन में लगा हूँ, पर कुछ भी तो समझ में नहीं आया। हम लोगों का साधन-भजन करना वृथा है।" श्रीरामकृष्ण देव ने मुस्कराकर कहा—"देखो, जो खानदानी किसान हैं, वे, यदि बारह वर्ष भी अनावृष्टि हो, तो भी हल चलाना नहीं छोड़ते और जो पुश्तैनी किसान नहीं हैं, जो यह सुनकर कि किसानी में बहुत लाभ होता है, इस काम में लग जाते हैं—वे तो एक ही साल वर्षा न होने से किसानी का काम छोड़कर भाग जाते हैं। वैसे ही, जो सच्चे भक्त और विश्वासी होते हैं, वे यदि सारी आयु भी ईश्वर का दर्शन न पायें, तो भी उनका नाम और गुणगान करना नहीं छोड़ते।"

७. यदि तैरना सीखना हो तो पहिले बहुत दिनों तक जल में हाथ-पैर हिलाना पड़ता है; एकदम ही नहीं तैर सकते। इसी प्रकार यदि ब्रह्म-सागर में तैरना हो तो अनेक बार डूबना-उतराना पड़ता है, एक ही बार में नहीं होता।

व्याकुलता

१. भगवान के प्रति मन कैसा होना चाहिए ! जैसे सती का मन पति की ओर, कृपण का धन की ओर और विषयी का विषय की ओर होता है, उसी प्रकार जिस समय मन भगवान के प्रति होगा, उसी समय भगवान प्राप्त हो जायेंगे।

२. माँ के पाँच बच्चे हैं। उसने किसी को खिलौना, किसी को गुड़िया और किसी को खाना देकर भुला रखा है। उनमें से जो बच्चा खिलौना फेंककर 'माँ माँ' कहकर रोने लगता है, माँ झट उसे गोदी में उठाकर शान्त करने लगती है। हे जीव, तुम कामिनी-कांचन में भूले हुए हो। यह सब फेंककर जिस समय तुम जगन्माता के लिए रोने लगोगे, उसी क्षण वह आकर तुम्हें गोदी में ले लेगी।

३. धन आदि मुझे नहीं मिला, मुझे लड़का नहीं हुआ, यह यह कहकर लोग आँसुओं की धारा बहाया करते हैं, परन्तु मुझे भगवान नहीं मिले, उनके चरणकमलों में मेरी भक्ति नहीं हुई, यह कहकर क्या कोई अपनी आँखों से एक बूँद भी आँसू गिराता है !

४. ईसा एक दिन समुद्र के किनारे घूम रहे थे। एक भक्त ने आकर उनसे पूछा, "प्रभो, ईश्वर कैसे मिल सकता है?" उन्होंने तत्क्षण उसे जल में ले जाकर डुबा रखा। कुछ देर बाद हाथ पकड़कर उठाकर उससे पूछा, "कहो, तुम्हारी कैसी अवस्था

हो रही थी ?" भक्त ने उत्तर दिया, "प्राण अब गये, तब गए—ऐसा व्याकुल हो रहा था।" प्रभु ईसा ने कहा, "जब भगवान के लिये तुम्हारे प्राण इतने ही व्याकुल हो जायेंगे, तभी उनके दर्शन होंगे।"

५. जैसे बच्चे पैसे के लिए माता से हठ करके मचल जाते हैं, कभी रोते हैं, कभी उसे मारते भी हैं, इसी प्रकार आनन्दमयी माता को अपने से अधिक अपनी जानकर, उनको देखने के लिए जो व्यक्ति सरल बालक की भाँति व्याकुल होकर रोता है, उसको सच्चिदानन्दमयी माता दर्शन दिए बिना नहीं रह सकती।

६. भगवान को पाने के लिए व्याकुलता के विषय में श्रीरामकृष्ण देव ने कहा, "जब दक्षिणेश्वर के मन्दिर से सन्ध्या की आरती के घन्टे की ध्वनि आती थी तब मैं गंगाजी के किनारे खड़ा हो रोते-रोते चिल्लाकर कहता था, 'माँ ! दिन तो चला गया; अब भी तुमको देख नहीं पाया।'"

७. जिसे प्यास लगती है, वह क्या गंगाजल को गंदला बताकर किसी तालाब में जाकर अपनी प्यास बुझाता है ? जिसे धर्म की तृष्णा नहीं होती, वही 'यह धर्म ठीक नहीं है, वह धर्म ठीक नहीं है,' इस प्रकार बकवाद करता फिरता है। यथार्थ तृष्णा होने पर इन सब विचारों के उठने के लिये जगह ही नहीं रह जाती।

शब्द मुँह में रहता है। अन्त में केवल "हा" बोलते ही भावसमाधि में मग्न हो जाते हैं। इस प्रकार जो आदमी इतनी देर तक कीर्तन करता रहा था, वही अब वाह्य-ज्ञानशून्य होकर चुप हो जाता है।

५. जैसे झोपड़ी में हाथी घुस जाने से उसमें हलचल मच जाती है, वैसे ही इस देह-रूपी झोपड़ी में भाव-रूपी हाथी प्रवेश करने से शरीर उलट-पुलट हो जाता है।

६. जिसकी भगवान में भक्ति हो गई है, उसका भाव कैसा होता है, जानते हो ?—मैं यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री हो; मैं घर हूँ, तुम घरवाले हो; मैं रथ हूँ, तुम रथी हो; जैसा कहलाते हो, वैसा ही कहता हूँ; जैसा कराते हो, वैसा ही करता हूँ; जैसा चलाते हो, वैसा ही चलता हूँ।

७. श्रीभगवान के चरण-कमलों में भक्ति होने से विषय-कर्म आप-ही-आप नष्ट हो जाते हैं। फिर उस पुरुष को विषय-कर्म अच्छे नहीं लगते। मिश्री का शर्बत पीने के बाद फिर गुड़ का शर्बत कोई नहीं पीना चाहता।

८. जब तक श्रीभगवान के पाद-पद्मों में भक्ति और प्रेम न हो जाय, जब तक उनका नाम लेते-लेते आँखों में आँसू न आ जायँ और शरीर में रोमाञ्च न हो उठे, तब तक सन्ध्या-उपासना आदि नित्य-क्रिया करने की आवश्यकता है।

९. यात्राभिनय (एक प्रकार का नाटक) में तुमने क्या देखा नहीं है कि जब तक बाजा-गाजा बजता रहता है, और "हे कृष्ण,

वाइये" "हे कृष्ण, आइये" आदि बड़े ऊँचे गले से गाते रहते हैं, तब तक श्रीकृष्ण आरामशाही से बैठकर, अपना साज-बाज लेकर तम्बाकू पीते रहते हैं और दूसरों से गप-शप करते रहते हैं। जब ये सब शान्त हो जाते हैं और नारद ऋषि आकर कोमल स्वर से सप्रेम गाना शुरू करते हैं—"हे गोविन्द! हे मेरे जीवन! हे मेरे प्राण!" तब कृष्ण और अधिक ठहर नहीं सकते, व्याकुल होकर तत्क्षण अभिनय के स्थान में आ पहुँचते हैं। साधकों के विषय में भी यही बात है। जब तक साधक 'प्रभो, दर्शन दीजिये", "प्रभो, दर्शन दीजिये" कहकर पुकारता रहता है, तब तक निश्चय जानो, प्रभु वहाँ नहीं आते। प्रभु का जब आगमन होता है, तब साधक भाव में गद्‌गद् हो जाता है और फिर नहीं पुकारता। साधक जब भाव (प्रेम, भक्ति आदि) में गद्‌गद् होकर प्रभु का स्मरण करता है, तब प्रभु भी और देरी नहीं कर सकते।

१०. अहल्या ने प्रार्थना की थी—"हे राम! यदि शूकरयोनि में भी जन्म लेना पड़े, तो भी मुझे स्वीकार है; पर तुम्हारे चरण-कमलों में मेरी अटल भक्ति और श्रद्धा बनी रहे। मैं और कुछ नहीं चाहती।"

ध्यान

१. सत्वगुणी व्यक्तियों का ध्यान कैसा होता है, जानते हो? वे रात को मसहरी तानकर, उसके भीतर बैठकर ध्यान करते हैं; लोग समझते हैं कि वे सो रहे हैं। उनमें बाहरी दिखावट का भाव रहता ही नहीं।

२. ध्यान करते समय साधकों को कभी-कभी नींद-सी आती है, उसे योग-निद्रा कहते हैं। उस अवस्था में बहुत से साधक भगवान के रूप का दर्शन पाते हैं।

३. ध्यान ऐसा करना चाहिए कि जिससे चित्त ईश्वर में पूर्ण-रूपेण मग्न हो जाय अर्थात् 'डाइल्यूट' (Dilute)—एकाकार हो जाय। जब ठीक-ठीक ध्यान होता है तब बदन पर चिड़ियों के बैठने पर भी कुछ मालूम नहीं होता। जब मैं कालीमाई के मन्दिर की नाट-शाला में बैठकर ध्यान करता था, तब वहाँ के लोग मुझसे कहते थे— "आपके बदन पर कई प्रकार की चिड़ियाँ बैठकर क्रीड़ा किया करती हैं।"

साधन और आहार

१. जो हविष्यान्न खाता है, पर भगवान से विमुख है, उसका हविष्यान्न भी गो-मांस के समान ही समझो । और दूसरा जो गो-मांस खाता है, परन्तु भगवान की प्राप्ति के लिए चेष्टा करता है, उसके लिए गो मांस भी हविष्यान्न के तुल्य होता है ।

२. स्वर्गीय महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी की सास एक दिन श्रीरामकृष्ण देव का दर्शन करने आई थीं । श्रीरामकृष्ण देव ने उनसे कहा था—"तुम बड़ी अच्छी हो—संसार में रहकर भी भगवान की ओर मन रखा है।" उन्होंने कहा—"ऐसा कहाँ ! मुझे तो कुछ मालूम नहीं होता; आज तक भी तो मैं हर एक का जूठा खा नहीं सकती हूँ।" श्रीरामकृष्ण देव इस पर बोले—"अरे ! यह तुमने क्या कहा ! हर एक का जूठा खाने से ही क्या सब कुछ हो जाता है ! कुत्ते, गीदड़ आदि तो सभी की जूठी चीज़ खाते हैं; तो क्या इसी से उनको ब्रह्म-ज्ञान लाभ हुआ समझोगी !"

भगवत्कृपा

१. जैसे किसी कमरे का हज़ार वर्षों का अन्धकार एक बार एक दियासलाई जलाने से ही दूर हो जाता है, उसी प्रकार जीव के जन्म जन्मान्तर के पाप भगवान की एक कृपादृष्टि से ही दूर हो जाते हैं।

२. मलय पवन के लगने से जिन पेड़ों में कुछ सार है, वे सब चन्दन हो जाते हैं; किन्तु असार वृक्ष जैसे बाँस, केला आदि में कुछ असर नहीं होता। इसी प्रकार, भगवत्कृपा पाकर, जिनमें कुछ सार है, वे मुहूर्त भर में साधु-भाव से परिपूर्ण हो जाते हैं, किन्तु विषयासक्त मनुष्य पर सहज ही कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

३. छोटे-छोटे बच्चे अकेले घर के भीतर बैठे अपने आप खिलौने से खेला करते हैं, उनके मन में कोई भय की भावना नहीं होती। किन्तु यदि माँ आ जाय तो अपने सब खिलौने फेंककर 'माँ माँ' कहकर गोदी में दौड़ जाते हैं। तुम लोग भी आज धन-मान-यश के खिलौने लेकर संसार में निश्चिन्त होकर सुख से खेल रहे हो, कोई भय-भावना नहीं है। पर यदि आनन्दमयी माँ को तुम लोग एक बार भी देख पाओ, तो फिर तुम लोगों को धन-मान-यश अच्छे नहीं लगेंगे, सब फेंककर उनकी गोद में दौड़ जाओगे।

४. अपने-आपको कीचड़ में सानना बच्चों का स्वभाव ही है, किन्तु माँ-बाप उनको गन्दा नहीं रहने देते। इसी प्रकार जीव इस माया के संसार में पड़कर कितना ही मलिन क्यों न हो जाय, भगवान उसके शुद्ध होने का भी प्रबन्ध कर देते हैं।

सिद्ध अवस्था

१. लोहा यदि एक बार स्पर्शमणि छूकर सोना हो जाय तो फिर उसे चाहे मिट्टी के भीतर दबाये रखो, चाहे कूड़े में फेंक दो, रहेगा वह सोना ही। जिन्होंने सच्चिदानन्द को पा लिया है, उनकी भी ऐसी ही अवस्था है। वे लोग संसार में रहें या वन में, उन्हें उससे दोष-स्पर्श नहीं होता।

२. लोहे की तलवार को स्पर्शमणि छुलाने से वह सोने की हो जाती है। यद्यपि आकार-प्रकार वैसा ही रहता है, किन्तु उससे हिंसा का कार्य नहीं हो सकता। इसी प्रकार भगवान के पाद-पद्म स्पर्श करने पर मनुष्य से फिर कोई अन्याय नहीं होता।

३. किसी व्यक्ति ने श्रीरामकृष्ण देव से जिज्ञासा की, "सिद्ध पुरुष होने पर कैसी अवस्था हो जाती है?"

उत्तर में उन्होंने कहा, "जैसे आलू, बैंगन पक जाने पर नरम हो जाते हैं, वैसे ही सिद्ध पुरुष का स्वभाव भी नरम हो जाता है। उनका सब अभिमान चला जाता है।"

४. श्रीरामकृष्ण देव अपने शरीर को दिखाकर कहते थे— "यह तो खोल (आधार) मात्र है; माँ ब्रह्ममयी इसका आश्रय कर खेल रही है।

५. रामप्रसादी गाना जब सुनो तब नया ही मालूम होता है; इसका कारण क्या है, जानते हो? रामप्रसादजी जब गाना रचते थे, तब उनके हृदय में माँ ब्रह्ममयी साक्षात् विराजती थीं।

६. संसार में अनेक प्रकार से सिद्ध-अवस्था लाभ होती है। जैसे—स्वप्न-सिद्ध, मंत्र-सिद्ध, हठात्-सिद्ध और नित्य-सिद्ध।

७. स्वप्न-सिद्ध—स्वप्न में कोई-कोई इष्ट मन्त्र पाकर उसी को जपकर सिद्ध होते हैं। मन्त्र सिद्ध—कोई सद्गुरु से मन्त्र ग्रहण कर अपनी साधना-द्वारा सिद्ध हो जाते हैं। हठात्-सिद्ध—दैव-योग से किसी महापुरुष की कृपा लाभ कर जो सिद्ध होता है, उसे हठात्-सिद्ध या दैव-सिद्ध कहते हैं। नित्य सिद्ध—इनकी बचपन से ही धर्म में मति रहती है; जैसे कि लौकी या कुम्हड़े की बेल में पहले फल निकलते हैं और फिर उसके बाद फूल।

८. पुल के नीचे से सहज में ही जल निकल जाता है, ठहरता नहीं; वैसे ही मुक्त पुरुषों के पास जो रुपये-पैसे आते हैं, वे ठहरते नहीं, तुरन्त उठ जाते हैं। उनमें विषय-बुद्धि बिल्कुल नहीं रहती।

९. जो ध्यान-सिद्ध होते हैं, मुक्ति तो उनके पास ही है। ध्यान-सिद्ध किसको कहते हैं, जानते हो?—जो ध्यान में बैठते ही भगवद्-भाव में डूब जाते हैं।

१०. मुक्त पुरुष संसार में कैसे रहते हैं, जानते हो?—पन-डुब्बी चिड़िया के समान, जो पानी में रहती तो है, परन्तु उसके बदन पर पानी नहीं लगता; जब कभी थोड़ा लगता भी है तो एक बार बदन झाड़ देने से तत्क्षण सारा पानी गिर पड़ता है।

११. जहाज़ किधर भी क्यों न जाय, कम्पास (दिग्दर्शक यन्त्र) की सूई उत्तर दिशा ही दिखाती है; इस कारण जहाज़ को दिशाभ्रम

नहीं होता। इसी प्रकार, मनुष्य का मन यदि भगवान की ओर रहे तो फिर उसे कोई डर नहीं।

१२. चकमक पत्थर यदि सौ वर्ष भी जल में पड़ा रहे तो भी उसकी अग्नि नष्ट नहीं होती, उसे जल से उठाकर लोहे से ठोकते ही उसमें से आग निकल आती है। इसी प्रकार ठीक ठीक विश्वासी भक्त हजारों कुसंगों में भी पड़ा रहे तो भी उसका विश्वास और भक्ति किसी प्रकार नष्ट नहीं होती। भगवत् प्रसंग होते ही वह तत्क्षण फिर भगवत्प्रेम में उन्मत्त हो जाता है।

१३. जिसकी जैसी भावना होती है, उसे सिद्धि भी वैसी ही मिलती है। ऐसा कहते हैं कि चपड़ा नील भ्रमर की चिन्ता करते-करते स्वयं भी नील भ्रमर बन जाता है। इसी प्रकार, जो सच्चिदानन्द का चिन्तन करता है, वह स्वयं आनन्दमय हो जाता है।

१४. शराबी नशे में मत्त होकर जैसे कमर में पहनने की धोती सिर पर बाँधता है और कभी बगल में दबाकर घूमता है, सिद्ध महात्माओं की भी बाहरी अवस्था प्रायः उसी प्रकार होती है।

१५. अहंकार कैसा है, जानते हो? कमल की पँखुड़ियों के झड़ जाने पर भी जिस प्रकार चिन्ह बने ही रहते हैं, या नारियल की डाली टूट जाने पर भी जिस प्रकार पेड़ पर उसका निशान बना ही रहता है, उसी प्रकार अहंकार के छूट जाने पर भी उसका थोड़ा चिन्ह रह ही जाता है। परन्तु उस अहंकार से किसी का अनिष्ट नहीं हो सकता। उससे खाना-पीना, सोना आदि साधारण कर्म छोड़कर अन्य किसी प्रकार के कर्म नहीं हो सकते।

१६. जैसे आम पकने से आप-ही-आप डाल से गिर जाते हैं, वैसे ही ज्ञान-लाभ होने पर आत्माभिमान आदि आप-ही-आप चले जाते हैं। ज़बरन जातिधर्म का त्याग करना ठीक नहीं।

१७. गुण तीन प्रकार के हैं—सत्त्व, रजः और तमः। इन तीनों में से एक भी परमात्मा के निकट नहीं पहुँचा सकता। इस पर एक दृष्टान्त सुनो—

एक आदमी जंगल की राह से जा रहा था। इतने में तीन डाकुओं ने आकर उसे पकड़ लिया और उसके पास जो कुछ सामान था, सब लूट लिया। फिर उन डाकुओं में से एक ने कहा, "इसको रखकर और क्या होगा?" यह कहकर वह खड्ग उठाकर उस आदमी को मारने चला। तब दूसरे डाकू ने आकर कहा, "इसे मारो मत, मारने से क्या होगा? इसके हाथ-पैर बाँधकर यहीं छोड़ दो।" अन्त में सबने उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे वहीं छोड़ दिया। थोड़ी देर में उन्हीं में से तीसरे डाकू ने लौटकर उससे कहा, "अरे! तुमने कितनी चोट खाई! आओ, अब मैं तुम्हारा बन्धन खोल देता हूँ।" डाकू ने तत्काल उस आदमी का बन्धन खोलकर कहा, "मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें रास्ता बतला देता हूँ।" फिर रास्ते के समीप आकर उसने कहा, "देखो, उस रास्ते से तुम अपने घर पहुँच जाओगे।" तब वह आदमी उस डाकू से कहने लगा, "आपने मुझे प्राण-दान दिया, आप मेरे घर तक चलिये।" डाकू ने कहा, "नहीं, मैं वहाँ नहीं आ सकता। लोगों को मेरा पता लग जायगा। मैं तुम्हें केवल रास्ता

बतलाकर लौट जाता हूँ।" पहले डाकू को तमोगुण समझो, दूसरे को रजोगुण और तीसरे को सत्त्वगुण।+

१८. मुक्त पुरुष संसार में किस तरह रहते हैं, जानते हो!—जैसे आँधी से उड़ती हुई पत्तल। उसकी अपनी कोई इच्छा या अभिमान आदि नहीं रहता। हवा उसको उड़ाकर जिस ओर ले जाती है, उसी ओर चली जाती है— कभी कूड़े के ढेर पर, तो कभी अच्छी जगह पर।

१९. श्रीरामकृष्ण देव कहते थे—"गुरु, कर्ता और बाबा ये तीनों शब्द मेरे शरीर में काँटे-से चुभते हैं। ईश्वर ही कर्ता हैं, मैं कर्ता नहीं हूँ; वे ही यन्त्री हैं और मैं यन्त्र हूँ।"

२०. धान बोने से अंकुर पैदा होता है; परन्तु उसी धान को सिद्ध करके (उबालकर) बोने से उससे अंकुर नहीं उगता। इसी प्रकार, जो लोग सिद्ध हो गये हैं (जिनको आत्म-ज्ञान हो गया है), उन्हें इस संसार में फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।

२१. परमहंस-अवस्था किसे कहते हैं, जानते हो! हंस को दूध और पानी मिलाकर देने से जिस प्रकार वह दूध-दूध पीकर जल छोड़ देता है, उसी प्रकार परमहंस लोग संसार में सार वस्तु सच्चिदानन्द को ग्रहण कर असार वस्तु संसार को त्याग देते हैं।

+ तात्पर्य यह कि तीनों गुणों से पार होकर त्रिगुणातीत अवस्था में—आत्मस्वरूप में—पहुँचना चाहिए।

२२. पहिले अज्ञान रहता है, उसके बाद ज्ञान होता है। अन्त में, जब सच्चिदानन्द का लाभ होता है तब साधक ज्ञान और अज्ञान दोनों के पार चले जाते हैं। यह कैसे ?—जैसे कि शरीर में काँटा चुभने पर कहीं से यत्नपूर्वक एक और काँटा लाकर उस काँटे को निकालते हैं, फिर दोनों काँटों को फेंक देते हैं।

२३. जो नाचना जानता है, उसका पैर कभी बेताल नहीं पड़ता। जिस मनुष्य ने सिद्धि-लाभ किया है अर्थात् जिसे ईश्वर का साक्षात्कार हो चुका है, उससे और किसी प्रकार अन्याय नहीं हो सकता।

२४. बृहस्पतिजी के पुत्र कच की समाधि भंग होने के बाद जब उनका मन बाह्य जगत् में उतरा आ रहा था, तब ऋषि लोगों ने उनसे पूछा, "इस समय आपको कैसा अनुभव हो रहा है?" उत्तर में उन्होंने कहा, "सर्वं ब्रह्ममयं—ब्रह्म को छोड़ और कुछ भी नहीं देख पाता हूँ।"

सर्वधर्मसमन्वय

१. जिस प्रकार बिजली की रोशनी आती एक ही स्थान से है, किन्तु शहर में नाना स्थानों में नाना रूपों में प्रकाशित होती है, उसी प्रकार नाना देशों के विभिन्न जातियों के धर्मगुरुओं को उसी एक भगवान से स्फूर्ति मिलती है।

२. छत के ऊपर जाने के लिये जैसे जीना, बाँस, सीढ़ी आदि अनेक उपाय हैं, उसी प्रकार एक ईश्वर के पास पहुँचने के लिये अनेक उपाय हैं। प्रत्येक धर्म ही एक-एक उपाय है।

३. ईश्वर तो एक हैं, परन्तु उनके नाम और भाव अनन्त हैं। जो जिस नाम व जिस भाव से उनकी आराधना करता है, वे उसी नाम व उसी भाव से उसे दर्शन देते हैं।

४. कोई किसी भी भाव, किसी भी नाम या किसी भी रूप से उस अद्वितीय सच्चिदानन्द की उपासना या साधन-भजन क्यों न करे, उसे निश्चय ही भगवान का लाभ होगा।

५. जितने मत हैं, उतने ही पथ हैं। जैसे इस कालीमन्दिर में आने के लिये कोई तो नाव में, कोई गाड़ी से और कोई पैदल आता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न मतों के द्वारा भिन्न-भिन्न लोगों को सच्चिदानन्द की प्राप्ति होती है।

६. माँ का प्यार सब बच्चों के प्रति समान रहता है, किन्तु किसी बच्चे को खील, किसी को बताशा—जिसे जो खाना सह्य

होता है, देती है। इसी तरह भगवान भी विभिन्न साधकों की शक्ति और आवश्यकता को देखकर साधना की व्यवस्था कर देते हैं।

७. महात्मा केशवचन्द्र सेन ने श्रीरामकृष्ण देव से पूछा, "भगवान तो एक हैं, फिर धर्मसम्प्रदायों में इतना पारस्परिक वाद-विवाद क्यों दिखाई पड़ता है !" श्रीरामकृष्ण देव ने उत्तर दिया, "जैसे इस पृथ्वी पर लोग 'यह हमारी जमीन और यह हमारा घर,' कहकर उसे घेरकर बैठ जाते हैं, किन्तु ऊपर वही एक अनन्त आकाश है, उसे कोई नहीं घेर सकता, उसी प्रकार लोग अज्ञानवश अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ बताकर निरर्थक वाद-विवाद किया करते हैं। जब ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तब परस्पर विवाद नहीं रह जाता।"

८. हिन्दुओं में अनेकानेक मतों की कथायें पाई जाती हैं, तो फिर उनमें से हमारे लिए कौन सर्वश्रेष्ठ है ? हम कौनसा मत ग्रहण करें?

पार्वती ने महादेवजी से प्रश्न किया, "भगवन्! सच्चिदानन्द के लाभ की चाभी कहाँ है ?" महादेवजी ने उत्तर दिया, "विश्वास।" मतों में कुछ नहीं रखा है। जो जिस किसी भी मन्त्र में दीक्षित हो, उसी की वह विश्वाससहित साधना करे।

९. जो लोग संकीर्ण विचार के हैं, वे ही दूसरों के धर्म की निन्दा करते हैं, और अपने धर्म को श्रेष्ठ बताकर सम्प्रदाय गढ़ते हैं। किन्तु जो ईश्वरानुरागी हैं, वे केवल साधन-भजन किया करते हैं, उनके भीतर किसी तरह की दलबन्दी नहीं रहती। बँधे हुए ताल-तलैयों में ही काई आदि जमती है, बहती नदी में नहीं।

१०. भगवान एक हैं पर साधक और भक्तगण भिन्न-भिन्न भाव और रुचि के अनुसार उनकी उपासना किया करते हैं। एक ही दूध से कोई रबड़ी तो कोई पेड़ा बनाकर खाते हैं, कोई दही या मट्ठा बनाकर पीते हैं और कोई-कोई मक्खन या घी निकालकर खाते हैं। इसी प्रकार, जिनकी जसी रुचि होती है, वे उसी भाव से भगवान का साधन-भजन तथा उनकी उपासना करते हैं।

११. जल है तो एक पदार्थ, किन्तु देश, काल और पात्र के भेद से उसके नाम भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। हिन्दी में उसे 'जल' कहते हैं, उर्दू में 'पानी' और अंग्रेजी में 'वाटर'। एक दूसरे की भाषा न जानने के कारण ही कोई किसी की बात नहीं समझ पाता, किन्तु जान लेने पर फिर भाव में किसी तरह का भेद नहीं रह जाता।

१२. भगवान का नाम और ध्यान चाहे जिस रीति से करो, उससे कल्याण ही होगा। मिश्री की रोटी चाहे सीधी करके खाओ, चाहे टेढ़ी करके, वह मीठी ही लगेगी।

कर्म-फल

१. पाप और पारा कोई नहीं पचा सकता। यदि कोई छिपाकर पारा खा ले तो किसी-न-किसी दिन वह शरीर से फूट निकलेगा। पाप करने से उसका फल एक-न-एक दिन निश्चय ही भोगना पड़ेगा।

२. रेशम के कीड़े जैसे अपनी लार से अपना घर बनाकर आप ही उसमें फँसते हैं, वैसे ही संसार के जीव भी अपने कर्मपाश में आप ही फँस जाते हैं। जब वे रेशम क कीड़े तितली बन जाते हैं, तब घर को काटकर निकल आते हैं; इसी प्रकार विवेक और वैराग्य के उदय होने पर बद्ध जीव भी मुक्त हो जाते हैं।

युगधर्म

१. श्रीरामकृष्ण देव कहा करते थे, "ताली बजाकर प्रातःकाल और सायंकाल हरि-नाम भजा करो; ऐसा करने से सब पाप-ताप दूर हो जायेंगे। जैसे पेड़ के नीचे खड़े होकर ताली बजाने से पेड़ पर की सब चिड़ियाँ उड़ जाती हैं, वैसे ही ताली बजाकर हरिनाम लेने से देहरूपी वृक्ष पर से सब अविद्यारूपी चिड़ियाँ उड़कर भाग जाती हैं।

२. पुराने समय में सीधा-सादा ज्वर हुआ करता था और वह जड़ी-बूटी पाचन आदि के सेवन से अच्छा हो जाता था। आजकल जैसे मलेरिया का बुखार है तो वैसे ही उसका एग्युमिक्श्चर उपचार भी है! प्राचीन काल में मनुष्य योग-याग-तपस्या करते थे; अब तो कलि-काल के जीव हैं, उनके प्राण अन्नगत हैं और उनका मन भी दुर्बल है। वे यदि एकाग्र-चित्त होकर हरि का नाम लें तो उनकी सारी संसार-व्याधियाँ नष्ट हो जायँ।

३. जानकर, अनजान या भ्रम से अथवा और किसी प्रकार से क्यों न हो, श्रीभगवान का नाम लेने से उसका फल अवश्य मिलेगा। कोई तेल लगाकर स्नान करने जाय तो उसका जैसा स्नान होता है, वैसा ही यदि किसी को ढकेलकर पानी में गिरा दिया जाय तो उसका भी स्नान होता है; और यदि कोई घर में सोया हो और उसके बदन पर पानी डाल दिया जाय तो उसका भी वैसा ही स्नान हो जाता है।

४. किसी भी रीति से क्यों न हो, यदि कोई अमृत के कुण्ड में एक बार गिर पड़े तो अमर हो जाता है। यदि कोई स्तव-स्तुति करके गिरे तो वह भी अमर हो जाता है और यदि किसी को किसी तरह अमृत-कुण्ड में ढकेलकर गिरा दिया जाय तो वह भी अमर हो जाता है। इसी प्रकार, जाने, अनजाने या भ्रम से अथवा और किसी प्रकार से श्रीभगवान का नाम क्यों न लिया जाय, उसका फल अवश्य होगा।

५. इस कलियुग में नारदीय भक्तिमार्ग ही प्रशस्त है। अन्य युगों में नाना प्रकार की कठोर साधनाओं का नियम था। इस युग में उन साधनाओं से सिद्धि-लाभ करना बहुत कठिन है। एक तो जीव की आयु ही बहुत अल्प है, उस पर मलेरिया आदि बीमारियाँ उसे कमज़ोर कर देती हैं, वह कठिन तपस्या करे तो करे कैसे?

धर्म-प्रचार

१. साधु-महात्माओं का, उनके समीप रहनेवाले सम्बन्धी लो[illegible] विशेष आदर नहीं करते; पर दूर के मनुष्य उन पर श्रद्धा करते हैं। इसका क्या कारण है? बाजीगर का खेल देखने के लिए उसके घरवाले नहीं जमते, पर दूसरे लोग देखकर अवाक् हो जाते हैं।

२. वजरबट्टू के बीज पेड़ के नीचे नहीं गिरते, उड़कर दूर चले जाते हैं और वहीं उगते हैं। इसी प्रकार, धर्म-प्रचारकों के भाव दूर पर ही अधिक प्रकाशित होते हैं और सब लोग उनका आदर करते हैं।

३. दीपक के नीचे अंधेरा ही रहता है, उसका प्रकाश दूर पर पड़ता है। इसी प्रकार, साधु-महात्माओं को उनके आस-पासवाले लोग समझ नहीं सकते; दूर रहनेवाले उनके भाव से मुग्ध हो जाते हैं।

४. यदि आत्महत्या करनी हो तो एक नहरनी ही पर्याप्त होती है, पर दूसरे को मारने के लिये ढाल-तलवार की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार, लोकशिक्षा देना हो तो बहुत से शास्त्र पढ़ने पड़ते हैं और अनेक तर्क-युक्तियों से विचार करके समझाना पड़ता है; परन्तु खुद को धर्म-लाभ केवल एक बात पर विश्वास करने से ही हो सकता है।

५. उस देश में (भगवान श्रीरामकृष्ण देव की जन्म भूमि में) लोग जब धान की नाप-तोल करते हैं, तब एक आदमी तो

नापता रहता है और दूसरा पीछे खड़ा रहता है। जब नापते-नापते धान के ढेर में कमी होने लगती है तब वह पीछे का आदमी पीछे के ढेर से धान ढकेलकर सामने कर देता है। इसी प्रकार, जो लोग सच्चे साधु या भक्त होते हैं, उनके ईश्वरी कथा-कीर्तन में कमी होते-न-होते भीतर से नये-नये भाव पैदा होते जाते हैं; और इस प्रकार उनके भावों में कमी नहीं होने पाती।

६. जैसे एक आदमी लक्कड़ लाकर कहीं आग जलाकर बैठ जाय, तो और पाँच व्यक्ति भी आकर, वहाँ बैठकर आग तापने लगते हैं, वैसे ही साधु-संन्यासी लोग कठिन तपस्या कर भगवान की उपलब्धि करते हैं, फिर उनका संग कर और उपदेश सुनकर बहुत से मनुष्य भगवान में अपना चित्त स्थिर कर लेते हैं।

७. यथार्थ प्रचार कैसे होता है, जानते हो?—लोगों को भजन के उपदेश न देकर स्वयं ध्यान-भजन करे तो यह सबसे अच्छा प्रचार होता है। जो स्वयं मुक्त होने की चेष्टा करते हैं, वे ही वास्तव में प्रचार करते हैं। जो स्वयं मुक्त हो चुके हैं, उनके पास सैकड़ों लोग आप-ही-आप न मालूम कहाँ से आ जाते हैं और उनसे शिक्षा लेते हैं। इस पर दृष्टान्त देते हुए श्रीरामकृष्ण देव कहते थे—"फूल खिलने पर भौंरे आप-ही-आप आ जाते हैं।"

विविध

१. कलकत्ते के कोई एक प्रसिद्ध रईस एक दिन श्रीरामकृष्ण
देव के दर्शन करने आए और आकर तरह-तरह का कूट तर्क
शुरू कर दिया। श्रीरामकृष्ण देव ने उनसे कहा, "वृथा तर्क से
क्या लाभ होगा! सरलता के साथ श्रीभगवान का भजन करते
जाओ, तो अपना कुछ कल्याण होगा।" यह बात उस दाम्भिक
पुरुष को अच्छी न लगी और वह कह बैठा—"आप ही क्या सब
कुछ जान चुके हैं!" श्रीरामकृष्ण देव अति नम्र भाव से हाथ
जोड़कर बोले—"मैं कुछ भी नहीं जान सका हूँ, यह बात सही है,
पर झाड़ू स्वयं अपवित्र होकर भी जहाँ झाड़ता है, उस स्थान को
साफ़ ही करता है।"

२. वन में घूमते-फिरते श्रीरामचन्द्रजी पम्पा सरोवर में जल
पीने को उतरे थे। वे अपना धनुष-तीर सरोवर के किनारे ज़मीन में
गाड़कर रख गये थे। उन्होंने लौटकर देखा कि धनुष से बिंधा हुआ
एक मेढ़क खून से भीगा हुआ पडा है। राम ने बड़े दुःखित होकर
उससे कहा—"तुमने आवाज़ क्यों नहीं दी? आवाज़ देने से हमें
पता लग जाता और तुम्हारी ऐसी अवस्था न होती।" मेढ़क ने
कहा—"हे राम! जब कोई विपत्ति आ जाती है, तब 'राम, रक्षा
करो' कहकर पुकारता हूँ; पर अब वे ही राम जब स्वयं मार रहे हैं
तो मैं और किसको पुकारूँ!"

३. एक साध्वी भगवत्परायणा स्त्री संसार में रहकर पति और पुत्र आदि की सेवा करती और भगवान का चिन्तन-भजन करती थी। किसी बीमारी से एक दिन उसके पति का प्राणान्त हो गया। पति की अन्त्येष्टि-क्रिया पूरी कर उसने अपने हाथ की काँच की चूड़ियाँ तोड़ डालीं और सोने का कड़ा पहन लिया। लोगों के पूछने पर उसने उत्तर दिया—"मेरे पति की देह अब तक शीशे की चूड़ियों की तरह क्षणभंगुर थी। उनकी अनित्य देह अब चली गई, अब वे क्षणभंगुर नहीं हैं, नित्य अखण्डस्वरूप हो चुके हैं। इसी कारण मैंने कच्ची काँच की चूड़ियाँ छोड़कर सोने का पक्का गहना पहन लिया है।"

४. गंगाजल का जल में लेखा नहीं है, श्रीवृन्दावन की रज का भी धल में लेखा नहीं और श्रीजगन्नाथदेवजी (पुरी धाम) का महाप्रसाद भी अन्न नहीं है। ये तीनों ब्रह्मस्वरूप हैं।

हमारे अन्य प्रकाशन

हिन्दी विभाग

१-३. **श्रीरामकृष्णवचनामृत**-तीन भागों में-अनु॰ पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'; प्रथम भाग (तृतीय संस्करण)— मूल्य ६)
द्वितीय भाग (द्वि. सं.)—मूल्य ६); तृतीय भाग (द्वि. सं.)- मूल्य ७)

४-५. **श्रीरामकृष्णलीलामृत**—(विस्तृत जीवनी)—(तृतीय संस्करण)- दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य ५)

६. **विवेकानन्द-चरित**—(विस्तृत जीवनी)—(द्वितीय संस्करण)— सत्येन्द्रनाथ मजूमदार,—मूल्य ६)

७. **परमार्थ-प्रसंग**—स्वामी विरजानन्द, (सम्पूर्ण आर्ट पेपर पर छपी हुई; कार्डबोर्ड की जिल्द, मूल्य ३।), कपड़े की जिल्द, मूल्य ३।।।)

स्वामी विवेकानन्द कृत पुस्तकें

८. विवेकानन्दजी के संग में-(वार्तालाप)-शिष्य शरच्चन्द्र, द्वि. सं. मूल्य ५।)

९. भारत में विवेकानन्द (द्वि. सं.) ५)
१०. ज्ञानयोग (प्र. सं.) ३)
११. पत्रावली (प्रथम भाग) (प्र. सं.) २=)
१२. पत्रावली (द्वितीय भाग) (प्र. सं.) २=)
१३. देववाणी (प्र. सं.) २-)
१४. धर्मविज्ञान (द्वि. सं.) १।।=)
१५. कर्मयोग (द्वि. सं.) १।।=)
१६. हिन्दू धर्म (द्वि. सं.) १।।)
१७. प्रेमयोग (तृ. सं.) १।=)
१८. भक्तियोग (तृ. सं.) १।=)
...भूति तथा उसके (तृ. सं.) १।)
...ाक (प. सं.) १।।
२१. प्राच्य और पाश्चात्य (च. सं.) १।)
२२. महापुरुषों की जीवन-गाथायें (तृ. सं.) १।)
२३. व्यावहारिक जीवन में वेदान्त (प्र. सं.) १=)
२४. राजयोग (प्र. सं.) १=)
२५ स्वाधीन भारत ! जय हो ! (प्र. सं.) १=)
२६. धर्मरहस्य (द्वि. सं.) १)
२७. चिन्तनीय बातें (प्र. सं.) १)
२८. भारतीय नारी (द्वि. सं.) ।।।)
२९. भगवान रामकृष्ण धर्म तथा संघ (द्वि. सं.) ।।।=)
३०. शिक्षा (द्वि. सं.) ।।=)
शिकागो-वक्तृता (प. सं.) ।।=)

३२. हिन्दू धर्म के पक्ष में (द्वि.सं.) ॥=)
३३. मेरे गुरुदेव (पं. सं.) ॥=)
३४. कवितावली (प्र. सं.) ॥=)
३५. शक्तिदायी विचार (द्वि.सं.) ॥=)
३६. हमारा भारत (प्र. सं.) ॥)
३७. वर्तमान भारत (च. सं.) ॥)
३८. मेरा जीवन तथा ध्येय (द्वि सं.) ॥
३९. पवहारी बाबा (द्वि. सं.) ॥)
४०. मरणोत्तर जीवन (द्वि.सं.) ॥)
४१. मन की शक्तियाँ तथा जीवनगठन की साधनायें (प्र. सं.) ॥)
४२. विविध प्रसंग (प्र. सं) १≈)
४३. सरल राजयोग (प्र.सं.) ॥)
४४. मेरी समर-नीति (प्र.सं) ।≤)
४५. ईशदूत ईसा (प्र. सं.) ।=)
४६. विवेकानन्दजी से वार्तालाप (प्र सं.) १।=)
४७. विवेकानन्दजी की कथायें (प्र. सं.) १।)

---

४८. वेदान्त-सिद्धान्त और व्यवहार—स्वामी शारदानन्द, (प्र.सं.) ।=)
४९. गीतातत्त्व—स्वामी शारदानन्द, (प्र. सं.) २।=)

मराठी विभाग

१–२. श्रीरामकृष्ण-चरित्र—प्रथम भाग (तिसरी आवृत्ति) ४।
द्वितीय भाग (दुसरी आवृत्ति) ४।=
३. श्रीरामकृष्णवचनामृत (पहिली आवृत्ति)—(अंतरंग शिष्यांशीं व भक्तांशीं झालेलीं भगवान श्रीरामकृष्णांचीं संभाषणें) ५॥
४. कर्मयोग—(पहिली आवृत्ति)—स्वामी विवेकानंद १॥=
५. महापुरुषांच्या जीवनकथा—(पहिली आवृत्ति)—स्वामी विवेकानंद १॥=
६. माझे गुरुदेव—(दुसरी आवृत्ति) स्वामी विवेकानंद ॥=
७. हिंदु-धर्माचें नव-जागरण—(पहिली आवृत्ति)—स्वामी विवेकानंद ॥−
८. शिक्षण—(पहिली आवृत्ति)—स्वामी विवेकानंद ॥−
९. पवहारी बाबा—(पहिली आवृत्ति)—स्वामी विवेकानंद ॥
१०. शिकागो-व्याख्यानें—(तिसरी आवृत्ति)—स्वामी विवेकानंद ॥≈
११. श्रीरामकृष्ण वाक्सुधा—(तिसरी आवृत्ति)—भगवान श्रीरामकृष्णांच्या निवडक उपदेशांचें त्यांच्याच एका अंतरंग शिष्यानें केलेलें संकलन ॥=
१२. साधु नागमहाशय चरित्र—(भगवान श्रीरामकृष्णांचे सुप्रसिद्ध शिष्य)—(दुसरी आवृत्ति) २ रु.

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर–१, म.